करना बाँयें हाथ का खेल था। किन्तु आश्चर्य कि आठ देवियों के सेनाधिपत्व में आठ सेनायें प्रकट होकर न जाने कहाँ से आईं ? उन्होंने हमारे सभी सेनापतियों सहित अधिकांश चतुरंगिणी सेना को मार डाला।

'शेष सेना को अत्यन्त भयंकर कृत्या ने निगल लिया। आश्चर्य की बात यह थी कि वह कृत्या जिधर जाकर सिंहासन करती उधर के असुर वीर उनके श्वासोच्छ्वास के साथ खिंचते चले जाते और वह उन्हें पकड़कर मुख में डाल लेती। अन्त में जब समस्त असुरसेना समाप्त हो गई तो वह मेरी ओर झपटती हुई बोली—'अरे, अब तक तू अकेला ही क्या करेगा ? मेरे मुख में आकर विश्राम क्यों नहीं करता ?' उसकी उस कर्कश वाणी ने मुझे अत्यन्त भयभीत कर दिया और मैं किसी प्रकार अपने प्राण बचाकर भाग आया।'

रुद्रकेतु बोले—'पुत्र ! चिन्ता मत करो। भय और शोक को छोड़ दो। भगवान् शंकर को प्रसन्न करने के लिए अघोर मन्त्र का अनुष्ठान करो। उनका पूजन, ध्यान, मंत्र-जाप, होम, तर्पण और फिर ब्राह्मण भोजन कराओ। अनुष्ठान पूर्ण होने पर एक अश्व निकलेगा, उसपर सवार होकर रणक्षेत्र में जाने से विजय प्राप्त होगी।'

देवान्तक ने पिता के द्वारा निर्दिष्ट विधि से अनुष्ठान-कार्य सम्पन्न किया। ब्राह्मणों को भोजन कराने और उनका आशीर्वाद प्राप्त करने पर यज्ञवेदी से कृष्णवर्ण का एक अश्व निकला जो कि दीर्घकाय, सबल एवं अत्यन्त दर्शनीय था। उसके मुख से भयानक शब्द निकलता था। उस घोड़े को देखकर देवान्तक प्रसन्न हो गया।

उसने घोड़े को प्रणाम कर भावनापूर्वक अलंकारादि से सजाया और पूजन किया। तदुपरान्त अपने सेनापतियों की विशाल दैत्यसेना लेकर चलने का आदेश दिया। जब सेना तैयार हो गई तो उसके साथ वह भी उस घोड़े पर सवार हो गया।

काशी की ओर वेगपूर्वक बढ़ती हुई उस विशाल दैत्यसेना ने स्वर्ग और धरती को कम्पित कर दिया। उसके आगमन का समाचार सुनते ही लोग प्राण बचाने के लिए इधर-उधर भाग निकलते, किन्तु काशी के प्रजाजनों को विनायक की शक्ति में अटूट विश्वास था इसलिए उन्हें उसके पुनरागमन के समाचार से अधिक चिन्ता न हुई।

इस बार के युद्ध में सिद्धि देवी की अधिक सेनाएँ अधिक सफल नहीं हो सकीं। असुर उन्हें हराते हुए आगे बढ़ने लगे तो विनायक ने काशिराज की सुरक्षित सेना को युद्ध में भेजा और स्वयं भी सिंह पर आरूढ़ होकर चल दिये। उस समय पाश, परशु और धनुष आदि बाणादि से सम्पन्न उनका वीर वेश दर्शनीय था।

'भगवान् विनायकदेव की जय' बोलती हुई काशीनरेश की सेना असुरों से युद्ध में तत्पर हुई। स्वयं भगवान् भी रणक्षेत्र में जा पहुँचे। उन्हें देखते ही देवान्तक बोला–'तूने मेरे भाई नरान्तक को मारा है न! उनका प्रतिशोध तेरे रक्त से लेना अनुचित नहीं होगा। फिर भी तुझे प्राणों का मोह हो तो मेरी शरण में आकर अधीनता स्वीकार कर ले। तेरे बालकपन और भोली सूरत पर मुझे तरस आ रहा है।'

विनायक ने अट्टहास करके कहा–'तुम जैसे कायर को तरस न आयेगा तो और किसे आयेगा? अरे मूढ़! पिछली बार तो तू प्राण बचाकर भाग गया था, किन्तु इस बार नहीं जा सकेगा। क्योंकि तेरे जीवन की अवधि पूर्ण हो गई। इसलिए पहिले तू अपना पौरुष दिखा ले।'

देवान्तक क्रोधित हो उठा। उसने विनायक पर भीषण बाण-वर्षा की। किन्तु विनायक उसके सभी बाणों को काटते जा रहे थे। उसके बाण दैत्य-सेना के संहार में भी लगे थे। दैत्यराज ने अपनी विजय न होती देखकर माया की रचना की। वह कभी पृथ्वी पर तो कभी आकाश में,

कभी किसी रूप में तो कभी किसी रूप में दिखाई देता। फिर उसने मोहास्त्र का प्रयोग किया, जिससे युद्ध में उपस्थित सभी देवता, काशिराज की समस्त सेना और विनायक भी निद्राग्रस्त हो गए।

अब देवान्तक ने चक्र के मध्य एक त्रिकोणाकार कुण्ड बनाकर मांसादि की हवि देते हुए अभिचार कर्म का आरम्भ किया। यह समाचार काशिराज को गुप्तचरों से मिला तो वे साधारण नागरिक के वेश में भी छिपते हुए किसी प्रकार विनायक के पास जाकर उनके कान में बोले–'त्रिकालज्ञ प्रभो ! देवान्तक अभिचार कर्म कर रहा है, यदि वह पूर्ण हो गया तो अजेय हो जायेगा इसलिए निद्रा का त्याग कीजिए।'

देवान्तक को विराट् रूप के दर्शन

काशिराज की प्रार्थना सुनते ही वे चैतन्य हो गये और उन्होंने अपने धनुष पर खगास्त्र और घण्टास्त्र से अभिमन्त्रित दो बाण चढ़ाकर आकाश में छोड़े। बस, फिर क्या था, आकाश में भीषण घण्टानाद होने लगा, जिससे सभी निद्रित सैनिकों, देवताओं आदि की निद्रा भंग हो गई। वे तुरन्त उठकर देवान्तक के पास जा पहुँचे और उसके अभिचार कर्म में विघ्न डाल दिया।

निद्रा दूर होने का कार्य घण्टास्त्र ने, दूसरे खगास्त्र ने असंख्य पक्षी उत्पन्न कर दिये, जिन्होंने समस्त आकाश को पक्षियों से व्याप्त कर दिया जिनसे सर्वत्र अन्धकार छा गया तथा वे पक्षी दैत्य-सेना के वीरों को उठा-उठाकर भक्षण करने लगे। इससे समस्त सेना में खलबली मच गयी। अब अत्यन्त क्रोधित हुए देवान्तक ने घोर युद्ध किया, किन्तु विनायक के समक्ष उसके सभी प्रयास निष्फल रहते। तभी उसने विराट् रूप के दर्शन किये। मनुष्य का शरीर और हाथी का मुख, धरती पर चरण और आकाश को स्पर्श करता हुआ मस्तक। वह उस रूप को

देखकर अत्यन्त आश्चर्यचकित और भयभीत हुआ। तभी उन्होंने उसके मस्तक पर अपने दाँत से भयंकर प्रहार किया, जिससे वह चीत्कार करता हुआ सैकड़ों खण्डों में छिन्न-भिन्न होकर धरती पर बिखर गया। उसके मुख से एक ज्योति निकलकर विनायक के मुख में प्रविष्ट कर गई।

अपने स्वामी की मृत्यु हुई देखकर समस्त दैत्यसेना वेगपूर्वक इधर-उधर भाग गई। देवगण प्रसन्न होकर दुन्दुभियाँ बजाने लगे। काशिराज की सेना में विनायकदेव की जय गूँज उठी। विजय-वाद्य बजने लगे। दिशाएँ स्वच्छ हो गईं और उन्मुक्त वायु चलने लगी। इन्द्रादि देवगण वहाँ आकर उनकी स्तुति करने लगे–

"विमोचिता वयं बन्धाद् देवान्तककृताद् विभो।
उपेन्द्र इव देवेन्द्र कार्यं यस्मात् कृतं त्वया॥"

'हे प्रभो! आपकी कृपा से आज हम राक्षसराज देवान्तक के बन्धन से मुक्त हो गये। देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए आपने उपेन्द्र के समान पराक्रम किया है। इसलिए आप संसार में उपेन्द्र भी कहे जायेंगे। अब हम भय-रहित रूप से अपने-अपने अधिकार का उपभोग करेंगे तथा दीर्घकाल से अवरुद्ध हुए स्वाहाकार और वषट्कार के स्वर पूर्वकृत सर्वत्र सुनाई देंगे।'

स्तुति करके सभी देवता अपने-अपने स्थानों को गये। इन्द्र ने स्वर्ग से समस्त असुरों को बाहर खदेड़कर पुनः देवराज्य की स्थापना की। असुरों में शोक और देवताओं में आनन्द व्याप्त हो गया।

युवराज-विवाह तथा विनायक का जाना

काशिराज और उसके मित्र राजाओं ने भी विनायक का पूजन और स्तुति की तथा दूसरे दिन उन्होंने सभा में आकर अमात्यों से कहा–'अमात्यगण! मैं विनायकदेव को युवराज का विवाह करने के

लिए इनके माता-पिता से माँगकर लाया था, किन्तु बहुत समय तक असुरों के आक्रमण होते रहने के कारण युवराज का विवाह निरन्तर टलता रहा और विनायक को भी इनके माता-पिता के पास नहीं लौटा सके। यद्यपि काशी में इनका निवास हमारी सुख-समृद्धि और अभयता का कारण रहा है, तो भी इनके माता-पिता को घर न लौटने के कारण चिन्ता हो रही होगी। इसलिए हमें शीघ्र ही युवराज का विवाह करके इन्हें पहुँचा देना चाहिए।'

सभी सभासदों ने महाराज की बात का समर्थन किया। सर्वत्र युवराज के विवाह के निमन्त्रण-पत्र भेजे गये। मगधपति भी अपनी कन्या को लेकर वहीं आ गये। विनायकदेव ने विवाह-कार्य सम्पन्न कराया। कई दिनों तक हर्षोत्सव मनाया जाता रहा। तदुपरान्त सभी आगतजन काशिराज से सम्मानित होकर अपने-अपने स्थानों को लौट गये।

अब विनायक का पूजन करके काशिराज ने उनकी आज्ञा चाही। विनायक बोले—'राजन्! मैं यहाँ युवराज का विवाह कराने के लिए कुछ ही दिनों के लिए आया था, किन्तु अब तो बहुत दिन व्यतीत हो चुके हैं। पिताजी-माताजी मुझे याद करते होंगे। मुझे भी उनकी बड़ी याद आ रही है। इसलिए अब शीघ्र ही वहाँ पहुँचना चाहिए।'

विनायक का आदेश पाकर महाराज ने रथ तैयार करने का आदेश दिया और रथ के आने पर विनायक के साथ स्वयं भी उसपर सवार हुए। नगर-निवासियों को उनके वियोग असह्य था। वे उनसे कुछ दिन और रहने का आग्रह करने लगे।

उन श्रद्धावान् भक्तों का अत्यन्त आग्रह देखकर विनायक ने समझाया—'सुहृद्जनो! इस समय तो मुझे जाना ही होगा। किन्तु जब कभी आप पर कोई विपत्ति आये, मुझे याद करना, मैं तुम्हारी सहायता करूँगा। मेरी स्वयं की आवश्यकता होगी तो मैं स्वयं भी यहाँ उपस्थित हो जाऊँगा। फिर भी—

"न चित्तस्य समाधानं भवेद् वै चिन्तनेन मे।
मम मूर्तिं मृदा कृत्वा पूजयन्तु गृहे-गृहे॥"

'यदि आपके चित्त का समाधान मेरे चिन्तन से न हो तो मेरी मिट्टी की मूर्तियाँ बनाकर घर-घर में स्थापित करें और उसमें मुझ विनायक की भावना करके भक्तिपूर्वक पूजन करें।'

लोगों को संतोष हुआ। सभी विनायक की जय बोलने लगे। उन्होंने रथ की परिक्रमा की। महारानी ने भी अपनी सहेलियों के साथ आकर उनकी अभ्यर्चना की और उसके पश्चात् रथ चल पड़ा। जब तक नेत्रों से ओझल न हो गया, तब तक सभी एकटक उधर ही देखते रहे।

वायुवेग से चलता हुआ रथ कश्यपाश्रम पर जा पहुँचा। महाराज और विनायक दोनों उतरकर महर्षि दम्पति के चरणों में पड़ गए। राजा को आशीर्वाद देकर उन्होंने अपने पुत्र को हृदय से लगा लिया। काशिराज ने उन्हें असुरों के आक्रमण और विनायक के पराक्रम की समस्त घटनाएँ यथावत् सुनाईं, जिससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। दूसरे दिन मुनिवर की आज्ञा लेकर महाराज अपने नगर को लौट आये।

ढुण्ढिराज गणेश की स्थापना

काशी के घर-घर में भगवान् विनायक की मूर्तियाँ स्थापित की गईं। महाराज ने भी 'ढुण्ढिराज गणेश' के नाम से एक मूर्ति की स्थापना राजभवन में कराई। उन मूर्तियों के पूजन-प्रभाव से घर-घर में आनन्द छाया रहा था जिसने जो भी कामना की वही पूरी हुई।

उधर माता-पिता के पास रहते हुए विनायक को कुछ ही दिन व्यतीत हुए थे। उन्होंने अपने माता-पिता से निवेदन किया—'जननी एवं जनक! आपने जिस अभिप्राय से तप करके मेरे प्राकट्य की इच्छा की थी, वह कार्य पूर्ण हो चुका है। त्रिलोकी को त्रसित करने वाले समस्त दैत्यों का

संहार हो गया है तथा ऋषि-विप्रादि निर्भय रूप से यज्ञादि कार्यों का सम्पादन कर रहे हैं। इस प्रकार धरती का भार उतर गया है, अब मुझे अपने धाम को जाने की आज्ञा दीजिए।' विनायक के यह वचन सुनकर एक बार तो मुनि और उनकी पत्नी अवाक् रह गये। फिर कुछ सँभलकर महर्षि ने कहा–'देव ! अभी कुछ काल और निवास कीजिए।'

उन्होंने कहा–'अब तो मुझे जाना ही होगा। यहाँ मेरा कोई कार्य शेष नहीं रह गया है ऋषिवर !' माता ने सजल नयन पूछा–'अब कब दर्शन होंगे पुत्र ?'

विनायक बोले–'मेरा दर्शन भवानी मन्दिर में पुनः कर सकोगी माता !' और यह कहकर विनायक अदृश्य हो गये। महर्षि ने उनकी अष्ट-धातु की प्रतिमा स्थापित की और नित्य प्रति उसका यथाविधि पूजन करने लगे।

"विनायकस्य देवस्य श्रवणात् सर्वसिद्धिदम्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वोपद्रवनाशनम्।
सर्वकामप्रदं सर्वपापसंशयनाशनम्॥"

भगवान् विनायक गणपति का यह चरित्र सुनने पर सभी सिद्धियाँ देने वाला है। इससे धन-धान्य, यश एवं आयु की प्राप्ति तथा उपद्रवों का नाश होता है। यह सभी कामनाओं को पूर्ण सञ्चित पापों को नष्ट करने वाला है।

❁❁❁

68

षष्ठ खण्ड

१. प्रथम अध्याय

उग्रेक्षण सिन्धु का जन्म

त्रेता युग था, मिथिला देश की गण्डकी नामक नगर में चक्रपाणि नामक एक धर्मात्मा राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी अत्यन्त सुन्दरी और पतिव्रता थी। राज्य में आय के स्त्रोतों की कमी नहीं थी। इस कारण राजा तो सुखी थे ही, प्रजा भी सब प्रकार से निर्भय एवं नीरोग रहती थी। सदैव अपने राजा का जय-जयकार करती रहती।

परन्तु राजा की अधिक आयु होने पर भी उसके कोई सन्तान नहीं थी। उन्होंने अनेक यज्ञ, दान, व्रत, अनुष्ठानादि किए, किन्तु सभी निष्फल रहे। अन्त में राजा ने वन में जाकर तपस्या करने का विचार किया, किन्तु एक समस्या सामने थी–'राज्य को किसके भरोसे छोड़ा जाय?' बहुत विचार करने पर भी इसका कुछ समाधान दिखाई नहीं देता।

इसी अवसर पर वहाँ महर्षि शौनक का आगमन हुआ। राजा ने उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया और ऋषि के प्रसन्न होने पर उन्होंने अपनी व्यथा सुनाई और फिर राज्य छोड़कर वन में जाने का विचार बनाया। महर्षि ने राजा की बात पर कुछ देर गम्भीरता से विचार किया और फिर बोले–'राजन्! तुम्हें वन जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हें पुत्र की प्राप्ति यहीं हो जायेगी।'

महर्षि की बात सुनकर राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने पूछा–'पुत्र होगा तो कब? मेरी आयु ही बीती जा रही है मुनिराज! मुझे सब स्पष्ट कहने की कृपा करें।'

शौनक ने कहा–'नृपश्रेष्ठ ! तुम्हारे भाग्य में पुत्रयोग तो है, किन्तु उसमें कोई सञ्चित पाप बाधक रहा है । उस बाधा का निवारण करने के लिए तुम्हें भगवान् भास्कर को प्रसन्न करना होगा ।'

इसके पश्चात् महर्षि ने राजा को सूर्योपासना का विधान बताया और बोले–'इसे अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति सहित करने पर सूर्य भगवान् की प्रसन्नता अवश्य प्राप्त होगी । फिर पुत्र-प्राप्ति के मार्ग में कोई बाधा नहीं रहेगी । यह व्रतानुष्ठान एक मास तक करना होगा । नित्य प्रति किसी दैवज्ञ ब्राह्मण को एक दुधारू गाय दी जाय और एक लाख ब्राह्मणों को भोजन कराया जाय । अनुष्ठान पूर्ण होने पर सूर्यदेव की पत्नी सहित एक लाख नमस्कार करना भी आवश्यक है ।'

मुनि चले गये । राजा ने अपनी भार्या के सहित सूर्य भगवान् की उपासना आरम्भ की । अभी अनुष्ठान सम्पन्न नहीं हो पाया था कि एक दिन रानी उग्रा ने स्वप्न में सूर्य को अपने पति रूप में देखा और ब्रह्मचर्य खण्डित कर बैठी । प्रातःकाल उसने अपने स्वप्न की बात राजा को सुनाई तो उन्हें आश्चर्य हुआ, बोले–'कोई बात नहीं, मन में किसी प्रकार का विकार आने से ऐसा होना सम्भव है । किन्तु मेरे मन में कोई विकार नहीं आया है, इसलिए अनुष्ठान की सफलता निश्चित है ।'

रानी चुप हो गई, किन्तु उसे लगा कि गर्भवती हो गई है । धीरे-धीरे गर्भ बढ़ने लगा और जैसे-जैसे गर्भ बढ़ा, वैसे-वैसे उसके शरीर का तापमान तीव्र होने लगा । शरीर में बढ़ती हुई उष्णता दाह का रूप लेने लगी, इस कारण उसके लिए शीतल उपचारों की व्यवस्था हुई । तो भी गर्भ के कारण उत्पन्न हुई दाह को सह सकने में समर्थ न थी । अन्त में प्राण संकट में जानकर उसने समुद्र तट पर जाकर उस गर्भ को असमय में ही गिरा दिया ।

राजा ने यह बात सुनी तो दुःख में भर गए । परन्तु उग्रा की विवशता जानकर वे कुछ कह न सके । उधर वह गिरा हुआ गर्भ नष्ट नहीं हुआ ।

वह एक रौद्र रूप बालक के रूप में पड़ा हुआ रोने लगा । उसके रुदन स्वर से धरती-आकाश काँप उठे ।

उस बालक के तीन नेत्र थे, मस्तक बहुत बड़ा एवं मुख कुरूप थे । केश लाल वर्ण के थे तथा हाथ में त्रिशूल लिये हुए उत्पन्न हुआ था । उसके कारण समुद्री जीव भी व्याकुल हो रहे थे, अतः समुद्र स्वयं मानव रूप धारण कर और बालक को उठाकर महाराज चक्रपाणि के समक्ष उपस्थित हुआ ।

उसने कहा–'राजन् ! वह बालक तुम्हारा पुत्र है । तुम्हारी रानी ने इसे मेरे तट पर छोड़ दिया था । इसके रोने से ही तीनों लोक काँप उठे । देखिए, बालक कितना तेजस्वी है, जिसकी ओर देखना भी दुष्कर है, इसे सँभालिये ।'

बालक को प्राप्त करके राजा बड़े प्रसन्न हुए । रानी ने भी हर्षित मन से उसे गोद में लेकर दुग्धपान कराया । उसके नाम सिंधु, उग्रेक्षण और विप्रसादन रखे गए । वह शीघ्रता से वृद्धि को प्राप्त होने लगा ।

उग्रेक्षण का प्रबल पराक्रम तथा वर की प्राप्ति

उग्रेक्षण स्वभाव का क्रूर, अहंकारी और अत्यन्त बलवान् था । बाल्यकाल में ही मनुष्यों से तो क्या, हाथियों से टक्कर लेने वाला । उसने छोटी-सी आयु में न जाने कितने हाथी आदि केवल मुष्टि प्रहार से ही धराशायी कर दिये, न जाने कितने वृक्ष गिरा दिये । उसके प्रबल पराक्रम को देखकर माता को बड़ा हर्ष होता था ।

शीघ्र ही किशोरावस्था को प्राप्त उग्रेक्षण ने अपने माता-पिता से एक दिन कहा–'मैं त्रिलोकी पर अधिकार करने के उद्देश्य से वन में रहकर तपस्या करना चाहता हूँ, इसलिए मुझे ऐसा करने की आज्ञा दीजिए ।'

माता-पिता ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृति दी । उसने घोर वन में जाकर

एक सरोवर के तट पर तपस्या आरम्भ की । वह भूखा-प्यासा रहकर घोर तप करने लगा । उसे सूर्य की उपासना करते हुए दो हजार वर्ष व्यतीत हो गए । क्षुधा-पिपासा, धूप-वर्षा आदि सहते-सहते सूखकर काँटा हो गया ।

भगवान् भास्कर प्रसन्न हुए, उन्होंने प्रकट होकर अभीष्ट वर माँगने का आदेश दिया । उसने उनके चरणों में मस्तक रखकर निवेदन किया–'प्रभो ! मैं सभी देवता, मनुष्य आदि को जीतकर तीनों लोकों पर आधिपत्य स्थापित कर लूँ और मेरी मृत्यु कभी न हो ।'

सूर्य बोले–'ऐसा ही होगा । यह अमृतपात्र ग्रहण करो, इसे कण्ठ में लगाये रखना । इसके रहते हुए देवता, मनुष्य, नाग, पशु आदि कोई भी जीव तुम्हें दिन, रात्रि, प्रभात या सायंकाल कभी भी न मार सकेगा । जब यह पात्र हट जायेगा तभी अपने अंगुष्ठ के नखाग्र पर करोड़ों ब्रह्माण्डों को धारण करने वाला कोई अवतारी पुरुष ही तुम्हें मारेगा । तुम त्रिभुवन को जीतने में सफल होगे ।'

वरदाता सूर्य के अन्तर्धान होने पर उग्रेक्षण ने उस अमृत-पात्र को अपने कण्ठ में धारण किया और राजभवन में जाकर अपने माता-पिता को भगवान् भास्कर से वर प्राप्ति का समाचार सुनाया, जिससे वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसे सब प्रकार से समर्थ देखकर उन्होंने राज-पाट सौंप दिया तथा स्वयं तपश्चर्या हेतु वन में चले गए ।

उग्रेक्षण के राज्य का विस्तार होना

उग्रेक्षण ने राजा होते ही राज्य-विस्तार का विचार किया और अमात्यों को कार्य संचालन का भार सौंपकर दिग्विजय के लिए चल पड़ा । थोड़े समय में ही उसने अनेक राजा वश में कर लिये तथा जिन्होंने सामना किया उसके राज्य छीन लिये । इस प्रकार उसने क्रूरतापूर्वक

रक्तपान करते और उनके सर्वत्र आतंक फैलाते हुए समस्त पृथ्वी पर अपना अधिकार जमा लिया ।

अब उसने स्वर्ग पर आक्रमण किया । देवराज इन्द्र ने ऐरावत पर चढ़कर सामना किया, किन्तु उन्हें शीघ्र ही पराजय का मुख देखना पड़ा । उनकी समस्त देवसेना छिन्न-भिन्न हो गई । देव-नारियाँ सतीत्व की रक्षा के लिए पर्वतों की कन्दराओं में जा छिपीं । उग्रेक्षण ने स्वर्ग पर अधिकार कर अपने एक विश्वासपात्र दैत्य को वहाँ का अधिकारी बना दिया । हारकर भागते हुए इन्द्र भगवान् नारायण के पास बैकुण्ठ में जाकर पुकारने लगे । भगवान् ने उन्हें आश्वासन दिया और गरुड़ पर विराजमान हो स्वर्ग की ओर चल दिए । उग्रेक्षण ने उन्हें देखा तो युद्ध के लिए तत्पर हो गया । भगवान् ने चक्र चलाया तो उसने मुष्टि-प्रहार से चक्र को दूर फेंक दिया । उन्होंने गदा से प्रहार किया तो असुर ने उसे चूर-चूर कर दिया ।

भगवान् बड़े चकित हुए, फिर वह समक्ष गए कि यह वर के कारण प्रबल हो रहा है । इसलिए उन्होंने नीति से कार्य लेते हुए कहा—'असुरराज ! मैं तुम्हारे पराक्रम को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हूँ, अतएव मुझसे कोई अभीष्ट वर माँग लो ।' वह बोला—'देवाधिदेव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो कृपाकर मेरे गण्डकी नगर में सदैव निवास करें । बस, इतना ही वर अपेक्षित है ।'

श्रीहरि ने स्वीकार कर लिया । अब उसने बैकुण्ठ की व्यवस्था के लिए भी एक विश्वासी असुर की नियुक्ति की और भगवान् को साथ लेकर अपनी राजधानी में आया । वहाँ एक सर्वोत्तम भवन में भगवान् को ले जाकर कहा—'आप चाहे जिन देवताओं के सहित यहाँ सुखपूर्वक रह सकते हैं ।'

भगवान् वहीं रहने लगे । तब इन्द्रादि देवताओं ने उनसे कहा—'प्रभो ! आप तो इस मर्त्यधाम में कारावास कर रहे हैं, अब हमारा क्या होगा जगदीश्वर ?'

रमानाथ ने हँसते हुए कहा–'काल का उल्लंघन कोई नहीं कर सकता। उसी के प्रभाव से सब देहधारी उत्पन्न होते, वृद्धि को प्राप्त होते एवं मरते हैं। वही काल इस दैत्य का भी भक्षण कर लेगा। किन्तु धैर्यपूर्वक उस काल की प्रतीक्षा करनी होगी।'

कभी-कभी अपने माता-पिता के पास जाकर अपनी विजयगाथा सुनाता रहता, जिससे उन्हें बड़ी प्रसन्नता होती और वे उसे आशीर्वाद प्रदान करते रहते। परन्तु वे यह कभी नहीं पूछते थे कि तू शासन कैसे चलाता है ? कहीं "कोई अधर्म कार्य तो नहीं करता ? प्रजाजनों को सुखी रखता है या नहीं, इत्यादि। अब उसने एक चरण और आगे बढ़ाया–घोषणा की गई कि कोई भी व्यक्ति यज्ञ, दान, उपासना आदि न करें। मन्दिरों में स्थापित प्रतिमाएँ हटाकर जल में डुबा दी जायें अथवा धरती में गहरी गाड़ दी जायें। उन प्रतिमाओं के स्थान पर उग्रेक्षण मूर्ति स्थापित कर उनका नित्य पूजन किया जाये।"

राजभय से सबको वही करना पड़ा। जो विद्वान् एवं धर्मज्ञ पुरुष, योगी, तपस्वी आदि उस प्रकार के अत्याचार को नहीं सहते थे, नगर छोड़कर जंगल में चले गये। सर्वज्ञ असुरों का जोर बढ़ गया। मांस-मदिरा सेवन, सतीत्वनाश, चोरी, मिथ्या भाषण, छल-कपट आदि की घटनाएँ सर्वत्र होने लगीं। इस प्रकार जहाँ देखो वहीं आसुरी कर्म ही दिखाई देते थे।

❁❁❁

२. द्वितीय अध्याय

देवताओं द्वारा संकष्टीचतुर्थी-व्रत करना

उग्रेक्षण के अत्याचारों से पीड़ित हुए देवगण एक गुप्त स्थान पर

बैठकर राक्षसगण के पराभव का उपाय सोचने लगे । उस समय देवगुरु बृहस्पति ने उपाय बताया–'भगवान् गजानन का पूजन करो, वे समस्त संकटों को नष्ट करने में समर्थ हैं । संसार के सर्ग, पालन और लय में वे ही परमात्मा का एकमात्र कारण हैं । इस दैत्य का विनाश भी वही कर सकते हैं । उन विघ्नेश्वर विनायक को माघ मास की चतुर्थी तिथि बहुत प्रिय है । उस दिन जो उनका पूजन करता है, वही संकटों से मुक्त हो जाता है ।'

देवताओं ने पूछा–'उनका पूजन किस प्रकार किया जाय गुरुदेव ? यदि पूरा बताने की कृपा करें तो वैसा ही करने का तत्पर हों ।'

बृहस्पति बोले–'अब माघ मास का आरम्भ ही है । कृष्णपक्ष के इस मंगलवार को ही चतुर्थी तिथि आ रही है, उसी दिन उनका षोड़शोपचार पूजन करते हुए उनकी स्तुति करें तो वे करुणासिन्धु उस दैत्य को शीघ्र ही मार डालेंगे । तब तुम अपने पद को पुनः प्राप्त कर सकोगे ।' सुरगुरु के आदेशानुसार माघ कृष्णा चतुर्थी को देवताओं ने संकष्टी चतुर्थी का व्रत आरम्भ किया । भगवान् गणपति की प्रतिमा स्थापित कर षोड़शोपचार पूजन करने के पश्चात् भावपूर्ण हृदय से उनकी स्तुति की ।

"दीनानाथ दयासिन्धो योगिहृत्पद्मसंस्थितः ।
अनादिमध्यरहित-स्वरूपाय नमो नमः ॥"

'हे दीनों के स्वामी ! हे दयासिन्धु ! हे ज्ञानगम्य ! आपको नमस्कार है । हे मायातीत ! भक्तों के अभीष्ट पूर्ण करने वाले आपको बार-बार नमस्कार है ।'

देवगणों की स्तुति से प्रसन्न हुए वरद विनायक भगवान् प्रकट हुए । वे सिंह के समान प्रतीत होने वाले मूषक पर सवार एवं अद्भुत वस्त्राभूषणों से सुशोभित हो रहे थे । उन्होंने कहा–'देवगण ! तुम्हारे द्वारा

किए गए संकष्टी-व्रत से मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। बोलो, क्या चाहते हो, वही मुझसे ले लो।' देवता बोले–'प्रभो ! हम निश्चय ही अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं जो केवल इस व्रत के प्रभाव से ही आपके साक्षात् दर्शन कर रहे हैं। नाथ ! उग्रेक्षण नामक असुरराज ने हमारा राज्य छीन लिया और भगवान् विष्णु को कैद कर लिया है। हे दयालु ! हम अपना खोया हुआ वैभव पुनः शीघ्र ही प्राप्त कर लें, ऐसी कृपा कीजिए।'

गणनायक ने आश्वासन दिया–'देवताओ ! मैं शीघ्र ही मयूरेश्वर नाम से अवतार धारण कर तुम्हारी कामनाएँ पूर्ण करूँगा। उग्रेक्षण का विनाश शीघ्र ही समझो।'

कैलास से शिवजी का पलायन

यह कहकर भगवान् विनायक अन्तर्धान हो गए। इधर देवताओं के पराभव का समाचार मिलने पर भगवान् शंकर पार्वतीजी और सात कोटि गणों के साथ कैलास छोड़कर त्रिसन्ध्या क्षेत्र में निवास करने लगे। वहाँ दैत्यराज के भय से संत्रस्त हुए गौतमादि अनेक ऋषि-महर्षि पहले से ही निवास कर रहे थे। वहीं भगवान् शंकर ने तपस्या आरम्भ कर दी।

एक दिन समय प्राप्त होने पर पार्वतीजी ने अपने नाथ से पूछा–'प्रभो ! आप तो स्वयं ही सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय के एकमात्र कारण हैं, फिर आप किसकी प्रसन्नता के लिए तपस्या कर रहे हैं ? यह रहस्य मुझे बताने का कष्ट कीजिए।'

शिवजी बोले–'प्रिये अनन्त कर्म वाले जिन भगवान् के प्रत्येक रोम में असंख्य ब्रह्माण्ड रहते हैं, वे समस्त गुणों के ईश्वर गुणेश ही मेरे आराध्य हैं। अनेक व्यक्ति उन्हीं गुणेश को गणेश भी कहते हैं।' उनकी प्रसन्नता प्राप्ति के लिए तप करना आवश्यक होता है।

पार्वती को पुत्र की प्राप्ति, मयूरेश्वर का जन्म

गौरी ने तपस्या की विधि पूछी तो शिवजी ने उन्हें गणेश के एकाक्षरी मन्त्र 'गं' का उपदेश कर उपासना की विधि बताई। तब गौरी भी प्रसन्न मन से शिवजी की आज्ञा लेकर तपस्या के लिए सेखनाद्रि पर्वत पर गईं वहाँ उन्होंने बारह वर्ष तक घोर तप किया।

तभी उन्होंने भगवान् गणेश के दर्शन किये। उनका अद्भुत रूप था। दस भुजाएँ, गजवदन, मस्तक पर चन्द्रमा, मध्यभाग में नारायण मुख, दक्षिण भाग में शिव-मुख और वाम भाग में ब्रह्म-मुख दिखाई देता था। वे शेषनाग और पद्मासन लगाये हुए विराजमान थे। उस गौर वर्ण प्रभु ने अपनी गम्भीर वाणी में कहा–

'जगदीश्वरि ! आपकी तपस्या से अत्यन्त प्रसन्न हूँ। आप अपना अभीष्ट वर माँगिये।'

पार्वती ने प्रणाम करके कहा–'प्रभो ! आप प्रसन्न हैं, यही मैं चाहती हूँ। आपकी तुष्टि के अतिरिक्त अन्य कोई वर मुझे अभीष्ट नहीं है। आप मेरे पुत्र रूप में प्रकट होकर निरन्तर दर्शन को प्राप्त करावें।'

'एवमस्तु' कहकर देवाधिदेव गणेश अन्तर्धान हो गए। गिरिजा ने वहाँ एक सुन्दर मन्दिर की स्थापना कर गणेशजी की मूर्ति स्थापित की और उसका नाम रखा 'गिरिजात्मज' और फिर वे भगवान् शंकर के पास आ गईं तथा उन्हें अपनी वर-प्राप्ति की बात बताईं।

शिवजी बोले–'देवि ! भगवान् तुम्हारे पुत्र रूप से अवतार लेकर दैत्य उग्रेक्षण और उसके साथियों को मारकर पृथ्वी का भार उतारेंगे और इन्द्रादि लोकपालों को उनके अधिकार की पुनः प्राप्ति करायेंगे।

इसके पश्चात् उस क्षेत्र में पार्वती जी का तप चर्चा का विषय बन गया। धीरे-धीरे भाद्रपद शुक्ल चतुर्थी का आगमन हुआ। उस दिन

चन्द्रवार, स्वाति नक्षत्र, सिंह लग्न एवं पाँच शुभ लग्नों का साथ था। पार्वतीजी ने गणेश जी का षोड़शोपचार पूजन किया ही था कि असंख्य मुख, असंख्य नेत्र, असंख्य कान, नाक, हाथ से युक्त विराट् स्वरूप तेजस्वी बालक का प्राकट्य हुआ। उन्होंने गिरिजा से कहा–'मातेश्वरि ! मैं वही गणेश हूँ, जिसकी आप निरन्तर आराधना करती रहती हैं। अब आपके पुत्र रूप से मेरा प्राकट्य हुआ है।'

गिरिजा बोलीं–'महा महिमामय ! अपने इस विराट् रूप छोड़कर मुझे पुत्र-सुख दो।'

इतना कहते ही उन्होंने सुन्दर बाल रूप धारण कर लिया, सुन्दर नासिका, तीन नेत्र, छः भुजाएँ, विशाल वक्षःस्थल, दर्शनीय मुख, चरणों में ध्वज, अंकुश, कमल आदि के शुभ चिह्न तथा करोड़ों चन्द्रमाओं के समान उज्ज्वल गौर वर्ण था।

तभी भगवान् शंकर ने बालक को देखकर प्रणाम किया और बोले–'पार्वती ! यह बालक रूप में सभी प्राणियों के स्वामी, सभी लोकों के नाथ, सभी के आश्रयभूत परमात्मा हैं। यही गणेश तुम्हारे पुत्र रूप से प्रकट हुए हैं।'

शिवजी ने बालक का जातकर्म-संस्कार कराया और विप्रों को इच्छित दान दिये। पार्वती ने उन्हें दुग्धपान कराया। समस्त क्षेत्र में ज्योतिषीगण उपस्थित हुए। उन्होंने बालक का नाम विघ्नहरण, विनायक, गुणेश या गणेश रखा और कहा कि 'यह बालक सभी शुभ कर्मों में प्रथम पूजनीय होगा। इसके द्वारा दैत्यों का संहार अवश्यम्भावी है।'

उग्रेक्षण का चिन्तित होना

उग्रेक्षण के गुप्तचरों ने उसे समाचार दिया कि 'कैलासपति शिव आपके भय से दण्डकारण्य के त्रिसन्ध्या क्षेत्र में अपने करोड़ों गणों और

अनेकानेक ऋषि-मुनियों के साथ निवास करते हैं। शिवपत्नी पार्वती को एक पुत्र की प्राप्ति हुई है, जिसके विषय में ज्योतिषियों का कहना है कि वह असुरों का संहार करेगा।'

दैत्यराज ने कहा–'कहाँ मैं इतना विशालकाय और महाबली तथा कहाँ वह छोटा-सा नवजात शिशु? एक छोटा-सा मच्छर किसी एक गजराज का वध कैसे कर सकता है?'

तभी उसने आकाशवाणी सुनी–'दैत्यराज! तेरा काल समीप है। तुझे मारने के लिए भगवान् गणेश ने अवतार धारण कर लिया है। मिथ्याभिमान छोड़कर उनकी शरण ले।'

अमात्यों ने कहा–'त्रिभुवननाथ! आपको अमर रहने का वर प्राप्त है, इसलिए चिन्ता कैसी? आकाशवाणी से इस प्रकार कहलाना देवताओं का षड्यन्त्र मात्र प्रतीत होता है। आपकी आज्ञा हो तो हममें से कुछ वीर उस स्थान पर जाकर अवसर मिलते ही उस बालक को मार डालें जिससे आप निश्चिन्त हो सकें।'

उग्रेक्षण ने चैन की साँस लेते हुए कहा–'यही करना होगा। शत्रु बालक पर अभी तो काबू पाना सरल है, बाद में वह प्रबल हो सकता है।'

असुरराज की आज्ञा पाते ही अनेक मायावी असुर उठ खड़े हुए और दण्डकारण्य की गिरि-कन्दराओं में रहकर अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। उन्होंने समस्त त्रिसन्ध्या क्षेत्र को अपना लक्ष्य बना लिया। वे वहाँ की प्रत्येक गतिविधि पर सतर्कता-पूर्वक ध्यान रखने लगे।

❁❁❁

३. तृतीय अध्याय

गृध्रासुर का मारा जाना

एक दिन एक असुर ने गृध्र का रूप बनाया । कुटी से बाहर खेलते हुए गणेशजी के पास जा पहुँचा । उसने इधर-उधर आहट लेकर देख लिया कि उसके क्रिया-कलाप को देखने वाला कोई नहीं है तो सहसा उन्हें अपनी भयंकर एवं विशाल चोंच में दबाकर आकाश में अत्यन्त ऊँचाई पर उड़ चला ।

तभी किसी कार्यवश माता पार्वती जी बाहर आईं तो उन्होंने पुत्र को कहीं न देखा । इससे 'हे गणेश, हे गणेश' पुकारती हुई व्याकुलता से इधर-उधर खोज करने लगीं । आकाश में उड़ते हुए गृध्रासुर की चोंच में दबे हुए गणेशजी ने माता की पुकार सुनी तो असुर के मस्तक पर मुष्टि प्रहार कर बैठे । बस, एक ही प्रहार ने असुर का मस्तक चूर्ण कर दिया और वह धरती की ओर गिरने लगा ।

गणेशजी सुखपूर्वक उसके मुख में बैठे रहे । माता ने गृध्र-सहित अपने पुत्र को आकाश से गिरता देखा तो उस ओर दौड़ीं । इतने में ही राक्षस धराशायी हो गया और पार्वती जी ने तुरन्त ही गणेशजी को उसकी चोंच से निकालकर अपनी गोद में ले लिया और स्तनपान कराने लगीं ।

क्षेमासुर एवं कुशलासुर का मारा जाना

क्षेम और कुशल नाम के दो असुर बड़े बलवान् थे । वे अवसर देखकर आश्रम में घुस आये । किन्तु माता पार्वती को बालक के पास बैठी देखकर दबे पाँव एक कोने में जा छिपे । जब माता उन्हें पालने में लिटाकर किसी कारणवश बाहर चली गईं तब दोनों असुर पालने के पास आये और उसमें से बालक को उठाने लगे ।

तभी गणेशजी ने अपने पाँव चलाये तथा लीलापूर्वक एक-एक पदाघात दोनों पर कर बैठे। बस, एक-एक बार में ही दोनों असुर दूर जाकर इतने जोर से गिरे कि उनकी हड्डी-पसलियों का ही चूर्ण हो गया। उनके हृदय फट चुके थे और रक्त वमन करके शान्त हो चुके थे।

माता आईं तो यह दृश्य देखकर अवाक् रह गईं। उनकी समझ में नहीं आया कि यह दोनों यहाँ किस प्रकार आये और कैसे मारे गये? पार्वतीजी ने अपने पुत्र को गोद में उठा लिया और गणों को आदेश दिया कि उन असुरों के शरीर उठाकर सुदूर अरण्य में फेंक दे।

क्रूर नामक असुर की मृत्यु

तीन राक्षस मारे जा चुके थे, किन्तु बालक का बाल बाँका नहीं हुआ। इससे असुरों में शंका तो उत्पन्न हो गई थी कि बालक में कोई विशेषता अवश्य है। फिर भी, वे उसकी विशेष सामर्थ्य से अपरिचित ही थे, अतः मारने के अनेक उपाय सोचने लगे।

राक्षस दल में 'क्रूर' नामक एक असुर अत्यन्त ही क्रूर था। उसे यथा नाम तथा गुण कहना अनुपयुक्त नहीं होगा। एक दिन उसका भी काल खींच ले गया। वहाँ पार्वतीजी मन्दिर में पूजन करने गई थीं और बालक गणेश मन्दिर के बाहर खेल रहे थे।

उसने सोचा, इससे अच्छा अवसर और कब आयेगा? वह भी एक मुनि-बालक का रूप बनाकर उनके साथ खेलने लगा। गणपति को उसके क्रिया-कलाप देखकर हँसी आ गई, किन्तु वह उस गूढ़ हँसी का अर्थ न समझ सका। वह कभी उनका कण्ठ पकड़ता तो कभी उनके केश खींचता। आरम्भ में तो गणेशजी ने उसका अधिक प्रतिरोध नहीं किया, किन्तु जब असुर के आघातों में प्रबलता आने लगी, तब उन्होंने उसे पकड़कर बलपूर्वक गला दबा दिया।

मन्दिर से बाहर निकलती हुई गौरी ने पुत्र की यह चेष्टा देखी तो आशंकित हो उठीं कि यह मुनिकुमार का गला अधिक न दबा दे, इसलिए उसे बचाने को दौड़ीं। किन्तु तब तक उसके प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। और वह छद्मवेश छोड़कर अपने असुर रूप में प्राणहीन रूप से धरती पर गिर चुका था। पार्वती जी उसे देखकर अत्यन्त व्याकुल हुईं और उन्होंने अपने पुत्र को उठाकर गोद में ले लिया।

व्योमासुर-वध

यह असुर झंझावात का रूप रखने में सिद्धहस्त था, इसलिए दैत्यराज के दरबार में इसका बड़ा सम्मान था। वह भी गणेश जी का वध करने के विचार से त्रिसंध्याक्षेत्र में रह रहा था।

एक दिन गणेशजी का उपवेशन-संस्कार होना था। माता पार्वती के साथ निवास करने वाली ऋषि-पत्नियों ने उन्हें दिव्य वस्त्रालंकार धारण कराये और तब आदिदेव गणाध्यक्ष का पूजन, पुण्याहवाचन कार्य सम्पन्न हुआ। उस समय सभी देवताओं ने वहाँ उपस्थित होकर इन श्रीमयूरेश्वर गणेश का पूजन किया, तदुपरान्त ऋषि-विप्रादि ने उन्हें आशीर्वाद दिए।

यही अवसर व्योमासुर ने अपने लिए अधिक उपयुक्त समझा। वह आश्रम के सामने खड़े हुए वृक्ष पर बैठकर जब उसे हिलाने लगा, तब पत्तों के हिलने से धीरे-धीरे झंझावात का रूप ले लिया। प्रबल आँधी के कारण किसी को कुछ भी दिखाई न देता था। उसी समय उस असुर ने गणेशजी को पकड़कर मारने का प्रयत्न किया, किन्तु गणेशजी द्वारा किये गए प्रत्याघात से वह स्वयं ही क्षत-विक्षत होकर गिर पड़ा।

आँधी का वेग रुका तो सभी ने देखा कि एक भयंकर राक्षस मरा पड़ा है। तभी भयातुरा पार्वती जी ने अपने पुत्र को अंक में ले लिया और

दुग्धपान कराने लगीं । सभी उपस्थित देवता और ऋषिगण बालक को चिरंजीवी होने का आशीर्वाद देने लगे ।

राक्षसी शतमहिषा का वध

व्योमासुर की एक विकराल मुख वाली बहिन थी । उसका समस्त शरीर ही भयंकर एवं विशाल था । उसे ज्ञात हुआ कि प्रिय भाई व्योमासुर मारा गया है तो वह क्रोध से काँपने लगी । उसने निश्चय किया कि भाई की मृत्यु का प्रतिशोध अवश्य लेगी । इसलिए सोलह वर्षीया किशोरी का रूप धारण किया और पार्वती जी के पास जाकर उन्हें प्रणाम कर बैठ गई ।

पार्वतीजी ने उसे कोई देवकन्या समझा, इसलिए बड़ा सत्कार किया । भोजनादि से सन्तुष्ट कर उसे रात्रि में अपने ही पास सुलाया । परन्तु, गणेशजी उसकी समस्त गतिविधि पर दृष्टि रखे हुए थे । पार्वतीजी को घोर निद्रा में पड़ी देखकर वह उठी और मयूरेश्वर को स्पर्श करने लगी । तभी सहसा उन्होंने उस राक्षसी के कान-नाक पकड़ लिये ।

राक्षसी ने अपने को छुड़ाने का प्रयत्न किया, किन्तु छोड़ने की अपेक्षा पकड़ बढ़ती गई । पर्वत के समान दबाव से छटपटाती हुई राक्षसी चीत्कार कर उठी । उसे सुनकर पार्वतीजी ही नहीं, अन्यत्र सोई हुई ऋषि-पत्नियाँ भी दौड़ी हुई चली आईं ।

उन सबने उसे छुड़ाने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु बालक ने राक्षसी के नाक-कान इतनी तीव्रता से मसले कि प्राणों के साथ ही शरीर से पृथक् हो गए । अब उसका आसुरी रूप प्रत्यक्ष हो चुका था । सभी महिलाएँ उसे देखकर भयाक्रान्त हो उठीं । माता बालक को उठाकर दुग्ध-पान कराने लगीं ।

और भी अनेक राक्षसों का वध

तदुपरान्त एक-एक कर अनेक असुर वहाँ आते रहे और प्राण गँवाते रहे । इस प्रकार कर्मठ, तल्प, दुन्दुभि, अजगर, शलभ, नूतुर, मत्स्य, शैल, कर्दम आदि अनेक महाबली राक्षस मारे गए । जितने भी राक्षसों ने अपनी इहलीला समाप्त की वे सभी भगवान् के हाथ से मरने के कारण मोक्ष के अधिकारी हुए । वस्तुतः वे सभी असुर अत्यन्त सौभाग्यशाली थे । भगवान् को मारने के विचार से भी आकर उन्हीं के धाम को प्राप्त हो गये थे । धीरे-धीरे मयूरेश पाँच वर्ष के हो गये ।

तरह-तरह की बाल-क्रीड़ाएँ

अब पार्वती-पुत्र अनेक बालकों के साथ क्रीड़ाएँ करने लगे । कभी गाते, कभी नाचते, कभी हँसते-हँसते बोलते थे । एक दिन मध्याह्न काल होने पर भी उन्हें भोजन प्राप्त नहीं हुआ । पार्वती जी किसी कार्य में व्यस्त थीं और वे क्षुधातुर हुए सोचते थे कि भोजन कैसे, कहाँ से प्राप्त हो ?'

जब कोई उपाय समझ में नहीं आया, तब वे महर्षि गौतम की कुटी पर जा पहुँचे । वह कुटी बहुत निकट ही थी, ऋषि-पत्नी भोजन बनाती हुई किसी कारणवश उठकर पाकशाला से बाहर निकल आई । अवसर देखकर गणेशजी ने पाकशाला में जाकर पके हुए भोजन का पात्र उठाया और चुपचाप बाहर निकल आये ।

साथी बालकों ने पूछा—'क्या है ?' उन्होंने कहा—'भोजन है, भूख लगी है, इसलिए उठा लाया । खेलते हुए बहुत देर हो गई, पहिले खा लें, तब पुनः खेलेंगे ।'

यह कहकर उन्होंने अन्नपात्र का अन्न सभी बालकों में बराबर बाँट दिया तथा अपना भाग स्वयं ले लिया । सभी ने तृप्त होकर पुनः खेलना आरम्भ कर दिया ।

इधर ऋषिपत्नी ने पाकशाला में जाकर देखा कि अन्नपात्र नहीं है। वे विस्मित चित्त से महर्षि के पास जाकर बोलीं–'नाथ ! पाकशाला में अन्नपात्र नहीं है, अभी बलिवैश्वदेव कर्म भी नहीं हो पाया था।'

महर्षि को भी आश्चर्य हुआ, पाकशाला में गये और सब ओर दृष्टि फिराई, अन्नपात्र कहीं नहीं था। तब बहार निकलकर उन्होंने देखा उमापुत्र के साथ कुछ मुनि-बालक खेल रहे थे और खाली अन्नपात्र उनके निकट पड़ा था।

उनको यह समझते देर न लगी कि इन्हीं में से किसी ने अन्नपात्र चुराया और मिलकर खा लिया है। उन्होंने ध्यान लगाकर गणेशजी की करतूत जान ली तो क्रोधित होकर बोले–'अरे, तू शिव-पार्वती का पुत्र होकर ऐसा दुष्टकर्म करता है ! और हम तो तुझे परब्रह्म परमात्मा समझते थे।'

इतना कहकर उन्होंने मयूरेश्वर का हाथ पकड़ा और पार्वती जी के पास ले गये। वहाँ जाकर उन्होंने कहा–'शिवे ! आपका यह पुत्र आये दिन उपद्रव करता रहता है। आज तो इसने हमारा अन्नपात्र ही चुरा लिया। बलिवैश्वदेवादि भी न हो पाया था कि समस्त अन्न इसने अन्य बालकों के साथ बैठ कर खा लिया।'

पार्वती बोलीं–'महर्षे ! मैं भी इसके क्रिया-कलापों से त्रस्त हो रही हूँ। इसके उत्पन्न होते ही असुरों के उपद्रव आरम्भ हो गये। बालकों के साथ ही खेल-खेल में उलझ जाता है तो पीछा नहीं छोड़ता। अब यह घरों में घुसकर भोजन भी चुराने लगा है। इसलिए इसे दण्ड देना पड़ेगा।'

यह कहकर माता ने रस्सी लेकर पुत्र के हाथ-पाँव बाँधने आरम्भ किए। महर्षि ने कहा–'मातेश्वरि ! इसे बाँधने की अपेक्षा स्नेहपूर्वक समझाओ।'

महर्षि चले गए। माता ने पुत्र को दृढ़ता से बाँधकर कोठरी में बन्द

कर दिया । फिर बाहर आकर विश्राम करने लगीं तो ऐसा अनुभव हुआ कि पुत्र गोद में ही खेल रहा है । फिर बाहर की ओर देखा तो पुत्र को बालकों के साथ खेलता पाया ।

माता को आश्चर्य हुआ । उसने कोठरी खोलकर देखा तो हाथ-पाँव बँधे हुए मयूरेश्वर पूर्ववत् बैठे हैं । उनके नेत्रों से आँसू गिर रहे थे । पार्वती ने हृदय कठोर बनाकर पुनः किवाड़ बन्द कर दिये, क्योंकि बालक को सीख देने के लिए कुछ डराना तो था ही ।

वे कुछ देर के लिए ऋषिपत्नी के पास जा बैठीं, किन्तु पुत्र के कोठरी में बँधा पड़ा रहने के कारण उनका मन न लगा । वे अपने आश्रम को लौटीं तो मार्ग में देखा कि मयूरेश्वर खेल रहे हैं । माता ने पुत्र का दुःख भूलकर उसे स्नेहपूर्वक पुकारा 'पुत्र ! घर चलकर जलपान कर लो ।' बालक ने उत्तर दिया—'माता ! यहाँ तो मयूरेश्वर नहीं है । उसे तो आपने कोठरी में बन्द कर रखा है ।'

माता को ध्यान आया और वह दौड़ी-दौड़ी आश्रम में पहुँचीं । उन्होंने कोठरी खोलकर पुत्र को देखा, वह रोता-रोता सो गया था । माता ने बन्धन खोलकर उसे हृदय से लगा लिया और स्तनपान कराने लगीं ।

उधर महर्षि गौतम ने वहाँ से लौटकर देवपूजन आरम्भ किया । किन्तु यह क्या ? उनके मन्दिर की सभी मूर्तियाँ गणेश रूप में दीखीं । कहने लगे—'देखो, मुझसे कितनी भूल हो गई ? मयूरेश्वर को सामान्य बालक के समान पकड़कर उनकी माता के पास ले गया, जिन्होंने उन्हें लताड़ते हुए कठोर रस्सी से बाँधकर घर में बन्द कर दिया । वस्तुतः यह हमारा सौभाग्य ही था कि साक्षात् परब्रह्म ने अपनी मित्र-मण्डली के साथ भोजन ग्रहण कर लिया । वे भगवान् मेरा अपराध क्षमा करें ।'

यह कहकर महर्षि श्रीगणपति के ध्यान में मग्न हो गए और उनकी पत्नी अहल्या पुनः भोजन बनाने में व्यस्त हो गयीं ।

४. चतुर्थ अध्याय

वृकासुर का वध

गणपति की आयु का छठा वर्ष चल रहा था, तभी एक दिन शिवजी के आश्रम में विश्वकर्मा का आगमन हुआ। मयूरेश्वर खेलने के लिए गये थे और लौट आये। तभी विश्वकर्मा ने उनके चरणों में प्रणाम किया और बोले–'प्रभो ! आपके प्रकट होने का समाचार जानकर दर्शनार्थ यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।'

गणेश बोले–'बड़ी कृपा की आपने, किन्तु यह तो बताइये कि मेरे लिए उपहार क्या लाये हैं ?'

विश्वकर्मा ने विनीत भाव से उत्तर दिया–'यद्यपि आप चराचर नाथ के लिए मैं क्या उपहार दे सकता हूँ ? तथापि सभी शत्रुओं के संग्रामार्थ तीक्ष्ण परशु, पाश, पद्म और अंकुश लाया हूँ, जो प्रस्तुत हैं।'

'वाह! कितना सुन्दर उपहार है ? यही तो चाहता था मैं। असुरों के उपद्रव बढ़ रहे हैं, देवगण उनके भय से त्रस्त हुए छिपे हैं और रमानाथ गण्डकी नगर में बन्दी जैसा जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में असुरों से युद्ध भी करना पड़ेगा।' मयूरेश्वर ने विश्वकर्मा को समझाया।

विश्वकर्मा उनकी परिक्रमा करके चले गये। गणेशजी उन दिव्यास्त्रों के चलाने का अभ्यास करने लगे। एक दिन उग्रेक्षण द्वारा भेजा हुआ एक महादैत्य वहाँ आया, जिसका नाम वृकासुर था। उसने गणेशजी को देखते ही उनपर आक्रमण कर दिया, तभी उन्होंने विश्वकर्मा प्रदत्त अंकुश का भयंकर प्रहार कर दैत्य की जीवन-लीला समाप्त की और स्वधाम में भेज दिया।

उपनयन-संस्कार मयूरेश्वर का

सातवें वर्ष गणपति का उपनयन संस्कार हुआ। जोर-शोर से तैयारी आरम्भ हुई। सभी देवता, यक्ष, किन्नर, चारण एवं अट्ठासी हजार ऋषियों ने उस उत्सव में भाग लिया। शिवजी ने सबका सहर्ष स्वागत किया। संस्कार के समय, जब मुनिगण मन्त्र पाठ करने लगे, तभी वहाँ कृतान्त और काल नामक दो भयंकर राक्षस मदमाते हाथी का रूप बनाकर आ गये। उन्होंने वहाँ उपद्रव आरम्भ किया तो शिवगणों ने उन्हें रोका। किन्तु वे शिवगणों को भी मारते-मारते मण्डप के निकट जा पहुँचे। उन्होंने स्तम्भों में टक्कर मारकर गिराने की चेष्टा की तो भयभीत हुए मुनिकुमार, देवगण एवं ऋषि-पत्नियाँ वहाँ से प्राण बचाकर भागे।

उनका यह कौतुक देखकर बटु गणेशजी ने एक हाथी की सूँड़ पकड़कर उमेठ डाली और फिर उसपर घोर मुष्टि प्रहार किया, जिससे पीड़ित होकर चीत्कार करता हुआ वह हाथी तीव्रता से पीछे को मुड़ा कि तभी उसकी जोर की टक्कर अपने साथी (दूसरे हाथी) से हुई। उसके कारण दूसरा हाथी भी आहत हो गया। तब विनायक ने उस पर भी मुष्टि प्रहार किया, जिससे वह व्याकुल हो गया। किन्तु गणेशजी ने उन्हें सँभलने का अवसर ही नहीं दिया। वे उनपर प्रहार-पर-प्रहार करते जा रहे थे, जिससे उनके अस्थिपंजर बिखर गये और वे प्राणहीन होकर धरती पर जा गिरे। यह देखकर सब आश्वस्त हुए और बालक के पराक्रम की प्रशंसा करने लगे।

तदुपरान्त मयूरेश्वर का विधिवत् उपनयन-संस्कार सम्पन्न हुआ। देवताओं, मुनियों आदि ने उन्हें अनेक प्रकार के अलंकार भेंट किये और फिर सब अपने-अपने स्थानों को लौट गये। तदुपरान्त उनका वेदाध्ययन आरम्भ हुआ। गणेश के मुख से होने वाला सस्वर वेदगान सभी को मुग्ध करता था। पशु-पक्षी आदि भी उसे सुनकर आनन्दित होते थे।

राक्षस नूतन वध

उग्रेक्षण ने गणेश की हत्या करने के लिए नूतन नामक एक विकराल राक्षस को आज्ञा दी । उसने त्रिसन्ध्या क्षेत्र में पहुँचकर अत्यन्त भयंकर हिंसक पशु का रूप बनाया और जहाँ गणेशजी द्वारा देवगान चल रहा था वहाँ पहुँचकर सिंहनाद करने लगा । उस नाद ने वातावरण को अत्यन्त विक्षुब्ध कर दिया जिससे पर्वत भी काँप उठा और गुफाएँ फटने लगीं ।

राक्षस के तीन मुख, चार कान, चार सींग, पाँच नेत्र, दो पूँछ और आठ पाँव थे, वह गणेशजी के सामने आकर नृत्य करने लगा । गणेशजी उठकर उसकी ओर बढ़े तो वह तुरन्त उड़कर आकाश में चला गया । इस प्रकार वह कभी उनके पास आ खड़ा होता और कभी उड़कर अदृश्य हो जाता था । उसके इस उपक्रम से सभी भयभीत थे ।

गणेशजी समझ गये कि राक्षस का अन्त समय आ गया है । वे उठकर उसे पकड़ने को दौड़े तो वह वन की ओर भागा । गणेशजी उसके पीछे-पीछे चलते गये । इसी बहाने से वह उन्हें घोर अरण्य में ले गया और फिर गर्जन करता हुआ आकाश में उड़ गया ।

उसकी गर्जना से धरती काँप उठी, नक्षत्र टूटने लगे, मेंघ बिखर गये । फिर वह जैसे ही धरती पर आया, वैसे ही मयूरेश्वर ने पाश फेंका, जिसके कारण उसकी समस्त माया नष्ट हो गई और वह उसमें बँधकर धराशायी हो गया । उसका विशाल शरीर चूर-चूर हो गया तथा प्राण पलायन कर गये ।

अण्डा से निकले पक्षी के वध का वर्णन

एक दिन आम के वन में गणेशजी अपने साथियों के साथ खेल रहे थे । वे वृक्षों से आम के फल गिरा-गिराकर खाने लगे । कुछ मुनिकुमार परस्पर व्यंग्य करते हुए एक-दूसरे पर फल फेंकने लगे । एक फल

उचटकर अण्डे की रक्षा करती हुई एक स्त्री के सिर पर जोर से जा लगा। वह स्त्री क्रोधपूर्वक आकर पूछने लगी—जिसने यह फल फेंककर मुझे मारा है, वह बालक कहाँ है ? उसे देखकर गणेशजी उस वृक्ष के कोटर में जा छिपे। वहाँ उन्होंने एक चमकता हुआ श्वेत अण्डा उठाकर देखा तो वह फूट गया और उससे एक विशालकाय पक्षी निकल आया। उसके विशाल पंख और नीला कण्ठ था, उसके मुख से अग्नि की लपटें निकल रही थीं। उसके पंख हिलाते हुए पृथ्वी काँप उठी और समुद्र क्षुब्ध हो गया। वह विशाल पक्षी भागते हुए मुनिकुमार पर पंखों से प्रहार करने लगा। यह देखकर गणेशजी ने शीघ्रता से कोटर से कूदकर उसके पंख पकड़ लिये। पक्षी भी प्रबल था, उसने किसी प्रकार अपने पंख छुड़ा लिये। अब गणेशजी और पक्षी में युद्ध छिड़ गया, अन्त में वह अत्यन्त पराक्रमी पक्षी उनके मुष्टि-प्रहार से मारा गया।

यह देखकर वह स्त्री गणेशजी की स्तुति करती हुई बोली—प्रभो ! मैं ! महर्षि कश्यप की भार्या विनता हूँ। उनका पुत्र यह शिखण्डी (मयूर) आपके सेवक रूप में समर्पित है। महर्षि ने पहिले ही बता दिया था कि इस अण्डे को जो फोड़ेगा, वही इसका स्वामी होगा। मेरे जटायु, श्येन और सम्पाति तीन पुत्रों को कद्रु-पुत्र ने नागलोक में बन्दी बनाया हुआ है, कृपाकर उन्हें मुक्त कराने का कष्ट करें।'

गणेशजी ने आश्वासन दिया—'माता ! आप चिन्ता न करें। मैं तुम्हारे पुत्रों को छुड़ाने का शीघ्र ही प्रयत्न करूँगा।' तदुपरान्त उन्होंने मयूर से कहा—'तुम पर प्रसन्न हूँ, कोई इच्छित वर माँग लो।'

मयूर बोला—'प्रभो ! मुझे तो आपकी भक्ति ही चाहिए। हाँ, एक इच्छा और है, वह यह कि आपके नाम से पूर्व मेरा नाम लगाया जाये, लोक में आपकी प्रसिद्धि मयूरेश्वर के नाम से हो।'

'ऐसा ही हो' कहकर गणेशजी मयूर पर चढ़कर अपने आश्रम में पहुँचे। माता पार्वती ने सब वृत्तान्त सुना तो वे बहुत प्रसन्न हुईं।

ऋषिकुमार भी उनकी प्रशंसा करते हुए अपने-अपने घरों को चले गये ।

अश्वासुर का वध

गणेशजी की आयु ग्यारह वर्ष की हो रही थी । आम्र-वन में विद्यमान सरोवर के किनारे मुनिकुमारों के साथ गणेशजी खेल रहे थे, तभी उग्रेक्षण के द्वारा भेजा हुआ एक राक्षस विशालकाय घोड़े के रूप में आकर उपद्रव करने लगा । उसकी भयंकर आकृति और आक्रमण चेष्टा देखकर कुछ मुनिकुमार सरोवर में कूदे, कुछ वृक्षों पर चढ़े और कुछ प्राण लेकर कहीं अन्यत्र जा छिपे ।

तभी गणेशजी ने उस पर वज्र तुल्य मुष्टिका का प्रहार किया । पहले तो उसने सामना किया, किन्तु बार-बार के मुष्टिका प्रहार में उसका शरीर अत्यन्त पीड़ित हो गया तो वह प्राण बचाने के लिए सरोवर में जा कूदा । यह देखकर गणपति ने भी छलाँग लगाई और उस घोड़े को जल में ही जा दबोचा तथा मर्दन कर मार डाला और उसका मृत शरीर उछालकर सरोवर से बाहर फेंक दिया । राक्षस को मरा देखकर सभी मुनिकुमार प्रसन्नता व्यक्त करने लगे ।

❀❀❀

५. पञ्चम अध्याय

नागलोक पर विजय

अश्वासुर के मरने पर वे सब अधिक हर्षित होकर जल-क्रीड़ा करने लगे । वहीं कुछ नाग-कन्याएँ भी सरोवर के दूसरी ओर आकर

जल-क्रीड़ा करने लगीं । तभी उनकी दृष्टि मुनिकुमारों के साथ क्रीड़ा करते हुए गणेश पर पड़ी । उन्होंने निकट आकर उनका परिचय पूछा ।

गणेश ने अपना परिचय दिया तो उन्होंने कुछ समय को घर चलने का आग्रह किया । वे बोले–'माता जी मेरी प्रतीक्षा करती होंगी, इसलिए आपके साथ नहीं चल सकता । मुझे घर से निकले हुए बहुत विलम्ब हो गया है ।'

नागकन्याओं ने बहुत आग्रह किया तो वे चुपचाप उनके साथ चल दिए । मुनिबालकों को उनके जाने का पता न चला । वे समझते रहे कि गणेशजी हमारे साथ ही हैं । मार्ग में भगासुर ने उन बालकों को छल से मारने का उपक्रम किया, किन्तु सर्वत्र मयूरेश्वर ने अपने प्रभाव से राक्षस को मार डाला ।

माता को भी यही प्रतीत हुआ कि गणेश घर पर आ गया, उन्होंने उनके प्रतिरूप को भोजन कराया और तब वे अपनी शय्या पर जाकर सो गईं ।

नागकन्याएँ उन्हें पाताल-लोक में स्थित अपने भवन ले पहुँचीं । वहाँ उद्वर्त्तनादि करके उन्हें स्नान कराया और दिव्य वस्त्रालंकार धारण कराकर अनेक प्रकार से उनका पूजन किया और फिर स्तुति करते हुए निवेदन किया कि 'प्रभो ! आप कुछ दिन यहाँ निवास करने की कृपा करें ।'

जब गणेशजी ने पूछा–'आपके पिताजी कौन हैं ?' तो उन्होंने उत्तर दिया–'हम नागराज वासुकि की पुत्रियाँ हैं । वे आपके दर्शन करके बहुत प्रसन्न होंगे ।'

यह कहकर नागकन्याएँ उन्हें अपने पिता के पास ले गईं । वहाँ नागराज वासुकि अत्यन्त चमकते हुए रत्नसिंहासन पर विराजमान थे । उनके मस्तक में अद्‌भुत मणि एवं रत्नमुकुट और कण्ठ में दिव्य मणियों का हार सुशोभित था । उन्हें देखते ही गणराज शीघ्रता से उनके फन पर

चढ़कर नाचने लगे । फन के हिलने से मणि का प्रकाश हिला और साथ ही तीनों लोक भी हिल उठे ।

इस प्रकार वासुकि को दण्ड देकर उन्होंने उन सर्पराज को कण्ठाभरण के समान गले में धारण कर लिया । इस कारण उस दिन से उनका नाम 'सर्पभूषण' या 'नागभूषण' हुआ । सर्पराज के पराभव का समाचार समूचे नागलोक में फैल गया । उनके भाई सहस्त्रफनधारी शेष जी ने सुना तो वे अत्यन्त क्रोधित होकर सोचने लगे–'मेरे भाई वासुकि को पराजित करने वाला कौन प्रकट हो गया ?'

शेषनाग दौड़े हुए गये और उन्होंने गणपति पर आक्रमण कर दिया । गणपति ने भी उनका सामना किया । स्मरण करते ही मयूर आ उपस्थित हुआ तथा गणेशजी उसपर चढ़कर घोर युद्ध करने लगे । शेषनाग के साथ असंख्य नाग थे । मयूर ने उनमें बहुतों को पंख की मार से मारा, बहुतों को आहत किया और कुछ नागवीरों को मुख में लेकर उदरस्थ कर लिया ।

यह देखकर शेषनाग अत्यन्त कुपित हुए, उनके मुखों एवं नासाओं से विष की भयंकर लपटें निकलने लगीं । मयूर उस विष-ज्वाला में झुलसकर मूर्च्छित हो गया । उसके गिरते ही मयूरेश अत्यन्त क्रोधित हुए और उछलकर शेषनाग के सिर पर जा चढ़े और अपना भार बढ़ाकर फणों पर नृत्य करने लगे ।

भार असह्य था, शेष उसे सह न सके और आन्तरिक पीड़ा से कराहते हुए रक्त वमन करने लगे । उसी स्थिति में गणेश जी ने उन्हें रस्सी के समान अपनी कटि में लपेट लिया । नागराज शेष आश्चर्य में डूब गये । सोचने लगे–'अवश्य ही यह जगदीश्वर हो सकते हैं, अन्यथा और कौन मेरी यह दशा कर सकता था ?' उन्होंने तुरन्त ही मयूरेश के समक्ष पराजय स्वीकार की और उनकी स्तुति करते हुए बोले–'मेरे लिए क्या आज्ञा है प्रभो !'

गणेश बोले–'तुमने सम्पाति, जटायु और श्येन को कैद कर रखा है, उन्हें छोड़ दो और मेरे पास लाने को कहो ।'

शेष ने अपने सेवकों को वैसा करने का आदेश दिया । कुछ देर में तीनों वहाँ ले आए गये । इतने में मयूर की मूर्च्छा दूर हो गई थी और वह गणेश जी के निकट ही बैठा था । तभी सम्पाति आदि तीनों ने अपने बड़े भाई मयूर को प्रणाम कर माता की कुशलता का समाचार पूछा और फिर गणेश जी की आज्ञा से मुक्त होकर मयूरेश के साथ ही चल दिए ।

मुनिकुमारों ने मयूरवाहन गणेशजी को आते देखकर कोलाहल किया–'मयूरेश आ गए, मयूरेश आ गए' जिसे सुनकर माता पार्वती ने सोचा कि 'मेरा बालक तो घर में सो रहा है, यह कौन-सा मयूरेश आया ?' उन्होंने बाहर निकलकर देखा तो वहाँ जितने भी बालक थे, वे सब मयूरेश ही दिखाई देने लगे । यह क्या, वहाँ एक नहीं सैकड़ों मयूरेश थे ।

त्रिसन्ध्याक्षेत्र से शिवजी का प्रस्थान

मयूरेश गणपति की ख्याति बढ़ती जा रही थी । उग्रेक्षण द्वारा भेजे हुए समस्त राक्षस उनके द्वारा मारे गये थे, इसी से वह बहुत व्याकुल था । इसपर भी जब उसे यह ज्ञात हुआ कि गणेश ने नागलोक पर भी विजय प्राप्त कर ली है, तब तो वह बहुत ही चकित और भयभीत हो गया ।

इधर शिव–पार्वती ने विचार किया कि हमारे पुत्र के कारण असुरों के उपद्रव बहुत बढ़ गये हैं । इस कारण पुत्र की सुरक्षा पर अब अधिक ध्यान दिया जाना आवश्यक है । अच्छा हो कि यहाँ से अन्यत्र चलकर रहा जाये । क्योंकि हमारे कारण यहाँ के निवासी ऋषि-मुनियों को भय और आतंक का जीवन व्यतीत करना पड़ रहा है ।

उनके जाने की बात सुनकर मुनियों को बड़ा दुःख हुआ । वे नहीं

चाहते थे कि कैलासपति शिव, माता पार्वती और गणेश जी वहाँ से जायें। उन्होंने शिवजी से प्रार्थना भी की, किन्तु उन्होंने वहाँ से हटना ही उचित समझा। वे वहाँ से चलने को तैयार हुए।

उस समय वहाँ समस्त ऋषिगण एवं ऋषि-पत्नियाँ उपस्थित होकर विरह से व्यथित हो रहे थे। अनेक ऋषि-मुनि तो उनके साथ ही चल पड़े। उनके साथ उनकी पत्नियाँ और बालक भी थे। शिवगणों का भारी समुदाय तो साथ था ही।

जब वे मार्ग में थे तभी उग्रेक्षण ने कमलासुर नामक अपने अत्यन्त पराक्रमी वीर को उन्हें मार डालने के लिए भेजा, जो कि बारह अक्षौहिणी चतुरंगिणी दैत्यसेना के साथ मार्ग में ही आ डटा। शिवगणों ने आकर उसकी सूचना दी और कहा कि 'अच्छा हो कि हम आगे न बढ़ें और पीछे लौटकर असुरों की गतिविधि पर दृष्टि रखें।'

गणपति ने कहा—'यदि पिताजी आज्ञा दें तो मैं अकेला ही उस समस्त बारह अक्षौहिणी सेना को भस्म कर डालूँ। पीछे लौटने की कोई आवश्यकता नहीं। हमें असुरों से बचाव नहीं करना है, उनका संहार करना भी अभीष्ट है।'

शिवजी ने ने मयूरेश को आज्ञा दी—'पुत्र ! अपने साथ इन गणों को भी ले जाओ, हमारा आशीर्वाद है कि तुम्हें विजय प्राप्त हो।' यह कहकर शिव-पार्वती भी अपने पुत्र का युद्ध-कौशल देखने के लिए साथ चल दिए।

कमलासुर का वध

कमलासुर ने देखा कि गणेश स्वयं युद्ध करने आ रहे हैं तो उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। सोचा-'अब इसे शीघ्र ही वश में कर लिया जायेगा।' परन्तु ज्योंही उसकी दृष्टि गणेशजी के पीछे-पीछे आने वाले शिवगणों पर पड़ी

तो वह आश्चर्यचकित हो गया ! न जाने कहाँ से इतना जन-समुद्र उमड़ा चला आ रहा था !

सामना होते ही दोनों पक्ष की सेनाएँ एक-दूसरे पर टूट पड़ीं। असंख्य राक्षस मारे गये और कुछ शिवगण भी धराशायी हुए। तभी मयूर ने कमलासुर के अश्व पर चन्चु-प्रहार किया। इस कारण उसका अश्व धराशायी हो गया। तभी वह असुर सँभलकर आकाश में उड़ने लगा। उसने क्रुद्ध होकर भयंकर बाण-वर्षा आरम्भ कर दी। इधर मयूरेश ने भी घोर बाण-वृष्टि से ही उसका उत्तर दिया।

राक्षस ने अपनी माया फैलाई, जिसे मयूर ने सहज में ही नष्ट कर दिया और फिर उसे अपनी माया दिखाई। असुर जिधर देखता उधर मयूरेश ही दिखाई देने लगे–

"दशदिक्षु मयूरेशं ददर्श कमलासुरः।
विस्मिताच्छाद्य नयने हृदि तं परिदृष्टवान् ॥"

उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं तो अपने हृदय में भी मयूरेश के ही दर्शन होने लगे। यह देखकर वह अत्यन्त आश्चर्यचकित हुआ और अपना वश न चलता देख रणक्षेत्र छोड़कर भाग निकला। देवताओं ने यह देखा तो वे उसे पकड़ लाये और बोले–राक्षस ! तू जाता कहाँ है ? कायरों के समान भाग कर दैत्य-कुल को अपयश का भागी न बना, युद्ध कर।'

विवश कमलासुर पुनः युद्ध करने लगा। उसने घोर गर्जना की और अनेक प्रकार तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्र लेकर प्रहार करने लगा। उसने पुनः विविध भाँति की मायाएँ रचीं, किन्तु मायानाथ के समक्ष उसकी एक भी न चली। समस्त मायाएँ देखते-देखते विलीन हो जातीं। अन्त में मयूरेश ने त्रिशूल से उसके मस्तक पर प्रहार किया, जिससे मस्तक कट कर भीमानदी के दक्षिणी तट पर जा गिरा।

राक्षसों की विशाल सेना नष्ट हो चुकी थी। सर्वत्र मयूरेश्वर का

जयघोष हो रहा था । प्रसन्न हुए उमा-महेश्वर ने पुत्र का अभिनन्दन किया और देवगण एवं मुनिगण प्रसन्न होकर उनकी स्तुति करने लगे । आकाश से पुष्प-वृष्टि होने लगी ।

विश्वकर्मा ने उपस्थित होकर वहीं मयूरेश-क्षेत्र का निर्माण किया । सुन्दर नगर बसाया गया तथा सभी के रहने की समुचित व्यवस्था की गई । शिव-पार्वती के लिए एक सुन्दर भवन बनाया, उसमें उन्होंने मयूरेश्वर गणेश के साथ निवास किया ।

मंगल दैत्य का वध

मंगल नामक एक अत्यन्त भयंकर और महाबलशाली दैत्य था । वह वराह का रूप बनाने में सिद्धहस्त था । इसलिए उग्रेक्षण की आज्ञा होने पर भयंकर एवं विशालकाय वराह का रूप रखकर वह मयूरेश-क्षेत्र में आया और बड़े-बड़े वृक्षों को टक्कर मारकर गिराता और धरती को कम्पायमान करता हुआ मयूरेश्वर के समक्ष आकर उछल-कूद करने लगा ।

गणेशजी ने ज्योंही उसे देखा, त्योंही उसके दाँतों को पकड़कर तीव्रता से नीचे-ऊपर करने लगे, किन्तु वह छुड़ा न सका । मयूरेश्वर ने उसके दाँतों को ही नीचे-ऊपर करते हुए अवसन्न कर दिया और अन्त में उसका शरीर प्राणहीन कर दिया ।

❀❀❀

६. षष्ठ अध्याय

नन्दी का पराभव

एक दिन शिवजी ने मस्तक से चन्द्रमा उतारकर रख दिया था, जिसे

लेकर गणेशजी बालकों के साथ खेलने के लिए कुछ दूर चले गये। भगवान् शंकर ने चन्द्रमा को न देखकर गणों से उसके विषय में पूछा तो वे बोले–'प्रभो ! उसे तो आपके पुत्र उठा ले गये हैं। हमने समझा कि आपकी आज्ञा से ही ले जा रहे होंगे, इसीलिए उन्हें टोका भी नहीं।'

शिवजी ने एक गण को आदेश दिया–'जाओ, उससे चन्द्रमा ले आओ।'

गण ने जाकर मयूरेश से चन्द्रमा देने को कहा तो वे बोले–'अभी तो इसके साथ खेल रहा हूँ, बाद में दूँगा।'

उसने लौटकर शिवजी को उनका उत्तर बता दिया तो उन्होंने कई गणों को एक साथ भेजते हुए कहा–'यदि वह चन्द्रमा दे दे तो ठीक अन्यथा यहाँ ले आओ।'

शिवगणों ने गणेशजी से चन्द्रमा माँगा तो उन्होंने नहीं दिया। इसपर गणों ने कहा–'तो स्वयं अपने पिताजी की सेवा में उपस्थित होकर कह दें।'

उन्होंने उत्तर दिया–'मैं तीनों लोकों को उत्पन्न करने वाली अत्यन्त महिमामयी माता शिवा का पुत्र हूँ। तुम जैसे सामान्य लोग मुझे कैसे ले जा सकते हो ?'

यह कहकर उन्होंने दीर्घ निःश्वास छोड़ा, जिससे विवश हुए शिवगण वायु में पत्तों के समान उड़ते हुए शिवजी के समक्ष जाकर गिरे। उनकी दशा देखकर शिवजी को क्रोध आ गया। उन्होंने प्रमथादिगण को आज्ञा दी–'जाओ, गणेश को पकड़ लाओ।'

प्रमथादिगण ने आज्ञा पालनार्थ गणेशजी से जाकर कहा कि 'मयूरेश्वर ! आपके पिता बुलाते हैं, तुरन्त चलिए।' इसपर अस्वीकृति-सूचक सिर हिला दिया। गणों ने कहा–'हम आपको बलपूर्वक ले चलेंगे।'

गणेशजी ने उनका उपक्रम देखा तो उन्हें मोहित कर स्वयं अन्तर्धान

हो गये। अब वे वन-वन में जाकर उनकी खोज करने लगे। उन्हें कभी तो गणेशजी दिखाई दे जाते और कभी दौड़ते हुए अदृश्य हो जाते। इस प्रकार वे जब अधिक थक गये, तब गणेशजी एक स्थान पर जा बैठे और गणों की पकड़ में आ गये।

किन्तु उन्होंने अपना भार अधिक बढ़ा दिया। गणों ने उन्हें बाँधकर ले जाने का प्रयत्न किया, किन्तु वे उन्हें उठा ही नहीं सके। बहुत प्रयत्न करने पर भी असफल रहने पर उन्होंने शिव जी से कहा–'भगवन्! हमने उन्हें लाने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु मिलकर भी न उठा सके। इसलिए अपनी असफलता पर हमें स्वयं लज्जा आती है!'

शिवजी हँसे, उन्होंने नन्दीश्वर को बुलाकर कहा–'नन्दी! आश्चर्य है कि अकेला गणेश इतना भारी हो गया है कि उसे यहाँ ले आने में कोई भी सफल नहीं हुआ। अच्छा, अब तुम जाकर इसे साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति के साथ लेकर आओ।'

शिवजी की आज्ञा पाकर नन्दीश्वर चले और मुनिकुमारों के साथ खेलते हुए गणेशजी से जाकर बोले–'गणपते! आपके पूज्य पिताजी बुलाते हैं, इसलिए शीघ्र ही वहाँ चलिए।'

उन्होंने अस्वीकृति-सूचक सिर हिलाया तो नन्दीश्वर बोले–'यदि स्वेच्छा से न चलोगे तो मैं बलपूर्वक ले चलूँगा। मुझे सामान्य गणों के या प्रमथादि के समान न समझना।'

नन्दी का अहंभाव देखकर उन्हें हँसी आ गई और तब उन्होंने तीव्र वेग से निःश्वास छोड़ा। फिर क्या था, नन्दीश्वर को जोर की एक पटक लगी और गहरी चोट के कारण मूर्च्छा आ गई। जब चेत हुआ तो उठकर शिवजी के पास जाकर कुछ कहना ही चाहते थे कि उनकी दृष्टि शिवजी की गोद में बैठे गणेशजी पर गई। उनके पास चन्द्रमा नहीं था, वह तो शिवजी के भाल पर ही सुशोभित था।

लज्जित नन्दी ने शिवजी से निवेदन किया– प्रभो ! आपके यह पुत्र आपके ही समान महिमावान हैं । आज से हम इन्हें भी अपना स्वामी मानते हैं । तभी समस्त शिवगण उनकी स्तुति कर जयघोष करने लगे–'गणेश्वर, गणपति, गणराज की जय ! गणेश की जय ! मयूरेश्वर की जय !'

इन्द्र का गर्व खण्डन

मयूरेश की तेरहवीं वर्षगाँठ थी । गौतमादि ऋषियों ने वहाँ आकर इन्द्रयाग कराया । तभी वहाँ कल-विकल नामक दो राक्षस आकर अनेक प्रकार के उपद्रव करने लगे । उन्होंने भैंसे का प्रचण्ड रूप धारण किया हुआ था । गणराज ने उनके मस्तक पर वज्र के समान मुष्टि प्रहार किया, जिससे वे अत्यन्त व्याकुल होकर धरती पर गिर गये और रक्त वमन करते हुए इहलीला से मुक्त हो गये ।

इन्द्रयाग में गणेशजी ने देवराज इन्द्र की उपेक्षा कर उन असुरों को मारा था । पहले तो इन्द्र अपनी उपेक्षा का कारण न समझ सके, किन्तु असुरों के मारे जाने पर उन्हें अपनी भूल का आभास हुआ और उन्हें मयूरेश्वर की स्तुति कर प्रसन्न किया ।

गणराज की बारात की तैयारी

गणेशजी पन्द्रह वर्ष के हो गये । इस आयु तक वे अनेकों राक्षसों का संहार कर चुके थे, इस कारण उनकी ख्याति सर्वत्र फैल गई थी । उनके अद्‌भुत कर्मों को देखकर देवगण प्रसन्न हो रहे थे । उनकी विवाह योग्य अवस्था देखकर जगज्जननी पार्वती जी ने एक दिन शिवजी से निवेदन किया–'प्रभो ! गणेश अब विवाह योग्य प्रतीत होता है, इसलिए कोई सुन्दर, सुशील एवं गुणवती कन्या देखकर इसका विवाह कर देना चाहिए ।'

शिवजी ने कहा–'प्रिये ! मैं भी यही सोचता था । परन्तु यह बाधा सम्मुख है कि इसके समान गुणवाली कन्या की खोज कहाँ की जाये ?'

यह विचार चल ही रहा था कि महर्षि नारदजी वीणा बजाते हुए वहाँ आ पहुँचे । शिव और शिवा ने उनका अत्यन्त स्वागत-सत्कार कर बैठने को श्रेष्ठ स्थान दिया, तभी शिवजी ने कहा–'देवर्षि ! आज तो आपके दर्शन बहुत समय के पश्चात् हुए हैं ।'

नारद बोले–'हाँ प्रभो ! कुछ इधर आना ही नहीं हुआ । फिर आप तो त्रिसन्ध्या क्षेत्र में निवास कर रहे थे, सहसा ही उस स्थान को छोड़कर यहाँ चले आये । ब्रह्मदेव ने आपके यहाँ होने की बात मुझे बताई तो सेवा में उपस्थित हो गया ।' इसी प्रकार वार्तालाप चलने लगा । तभी शिवजी बोले–'मुनिवर ! मयूरेश अब विवाह योग्य प्रतीत होता है । इसके अनुकूल कोई गुणवती कन्या बताने की कृपा कीजिए ।'

देवर्षि बोले–'ब्रह्माजी ने इसीलिए तो मुझे वहाँ भेजा है । उनकी दो कन्याएँ हैं–सिद्धि और बुद्धि । सब प्रकार से सुयोग्य अत्यन्त सौन्दर्यमयी और गुणों के कहने ही क्या । मेरा निवेदन है कि गणेशजी के लिए आप उन दोनों कन्याओं को स्वीकार करने की कृपा करें ।

शिव-शिवा दोनों ही प्रसन्न हुए । विवाह की तिथि निश्चित हुई और दोनों ओर से निमन्त्रण-पत्र भेजे जाने लगे । सर्वत्र आनन्द छा गया । देवगण, ऋषिगण, शिवगण और मुनिकुमार सभी प्रसन्न हो उठे । समय पर वर-यात्रा की तैयारी आरम्भ हुई ।

बारात बड़ी विचित्र थी । सभी देवता अपने-अपने अद्‌भुत वाहनों पर सवार होकर चल दिए । इन्द्र ऐरावत पर, शिवा-शिवजी नन्दी पर तथा गणेशजी मयूर पर बैठे थे । पवनदेव ने पुष्पों का यान जैसा बनाया और उसपर बैठकर उड़ चले । समस्त बाराती-समुदाय मस्ती से झूम रहा था ।

यह वर यात्रा गण्डकी नगर की ओर जाने वाले मार्ग से जा रही थी ।

मध्य में सात करोड़ दैत्यों का एक शिविर लगा था। वर-यात्रा के विशाल जनसमूह को देखकर असुरों को कौतूहल हुआ। बोले–'कौन हो तुम लोग? कहाँ के रहने वाले हो और कहाँ जा रहे हो?' समूह में से कुछ ने बताया–'मयूरेश क्षेत्र में रहते हैं, ब्रह्माजी की पुत्रियों का विवाह है, वहाँ बारात लेकर जा रहे हैं।'

असुर उद्दण्ड और युद्धप्रिय थे, बोले–'दैत्यराज उग्रेक्षण की आज्ञा है तुम्हारे पास? क्या तुम नहीं जानते कि उनकी आज्ञा के बिना कोई जनसमूह इधर से उधर हलचल नहीं कर सकते। चाहे वह वर-यात्रा हो या तीर्थ-यात्रा।'

देवगणों ने समझाते हुए कहा–'यह कोई ऐसा कार्य नहीं है, जिसके लिए दैत्यराज की अनुमति आवश्यक होती। इसलिए व्यर्थ ही शुभ-कार्य में विघ्न मत डालिए।' उद्धत दैत्य सेनापति बोला–'बकवाद न करो, हमको जैसा आदेश है वही करेंगे। यहाँ से आगे बढ़ने का विचार छोड़ो और चुपचाप वापस लौट जाओ।'

गणराज को उसकी उद्दण्डता अच्छी नहीं लगी। वे तीव्र स्वर में बोले–'व्यर्थ बातें मत बनाओ, चुपचाप मार्ग छोड़ दो, अन्यथा सेना सहित नष्ट हो जाओगे।'

दैत्य-सेनापति ने कहा–'आज बड़ा अच्छा दिन है। हमारा आहार स्वयं हमारे पास आ गया है। तुम्हारे जैसे मनुष्यों को ही तो हम खा जाने के लिए ढूँढ़ते हैं।'

तदुपरान्त उसने आक्रमण का आदेश दिया। उधर से भी शिवगण आगे बढ़े और देवगण उनकी सहायता करने लगे। बड़ा भयंकर युद्ध होने लगा। मयूरेश्वर ने दर्भास्त्र के प्रयोग का आदेश दे दिया।

मुनिकुमारों ने हाथ में जल लेकर दर्भास्त्र का संकल्प-जल छोड़ा। बस, फिर क्या था! दर्भ के सूक्ष्म खण्ड असुरसेना में फैलकर उनके

आँख, कान, नाक आदि मार्गों से श्वास के साथ शरीर में प्रविष्ट होकर हृदयों को पीड़ित करने लगे ।

दर्भ-खण्डों ने असुरों को व्याकुल कर दिया । कुछ बहरे हुए, कुछ अन्धे, कुछ का श्वास-मार्ग छिल गया, कुछ के फुफ्फुस और हृदय विदीर्ण हो गये, इस कारण रक्त वमन करने लगे । इस प्रकार कुछ ही क्षणों में वह राक्षसी सेना पूर्ण रूप से विनष्ट हो गई । बालकों ने कहा–'देव ! आपकी आज्ञा से हमने विशाल दैत्यसेना का बात की बात में संहार कर दिया । अब और जो कहो वहीं करें ।'

वरयात्रा पुनः पूर्ववत् आगे बढ़ी । धीरे-धीरे इतनी दूर पहुँच गये कि वहाँ से उग्रेक्षण की राजधानी गण्डकी नगर एक योजन दूर रह गई । वहाँ गणेशजी अपने वाहन मयूर से उतर पड़े ।

गणपति की प्रतिज्ञा

यहाँ गणेशजी ने एक वृहद् सिंहासन की स्थापना की जो अत्यन्त सुन्दर, दिव्य तथा भव्य था । उसपर उन्होंने शिव-शिवा और प्रमुख ऋषियों को बैठाया और अन्य सबको सिंहासन के आगे बैठने की व्यवस्था की । इस प्रकार समस्त जनसमूह वहाँ विश्राम के लिए ठहर गया ।

तभी मयूरेश बोले–'जनक-जननि, ऋषिगण, देवगण एवं शिवगणादि ! अभी गण्डकी नगर में अनेक देवताओं के साथ भगवान् श्रीहरि रह रहे हैं । जब तक वे मुक्त न हो जायें तब तक विवाहोत्सव में कोई आनन्द नहीं आयेगा । इसलिए मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं उन्हें मुक्त कराये बिना विवाह नहीं करूँगा । इसलिए कोई बुद्धिमान् पुरुष दैत्यराज के पास जाकर उन्हें मुक्त करने का सन्देश दे और वह उन्हें मुक्त करना स्वीकार न करे तो हमें उससे युद्ध करना होगा ।'

ब्रह्माजी ने 'साधु-साधु' कहकर गणेश की प्रशंसा की और पुष्पदन्त

को दूत बनाकर भेजने का प्रस्ताव किया। किन्तु पुष्पदन्त ने कहा–'यदि मैं दैत्यराज के समक्ष गया तो मुझे उसकी बातों से शीघ्र ही क्रोध आ जायेगा, इस कारण मैं नीति की रक्षा करने में असमर्थ रहूँगा। मैं तो उससे युद्ध-क्षेत्र में ही मिलना चाहता हूँ। इसलिए उसके पास किसी अन्य को भेजना ही उचित होगा।'

उसकी बात सुनकर विचार चलने लगा कि अन्य किस को भेजा जाय? बहुत विचार के पश्चात् मयूरेश ने ही समाधान किया–'मेरे विचार से तो नन्दीश्वर को भेजना चाहिए। यह अत्यन्त वीर, धीर, गम्भीर, बुद्धिमान्, पराशय को शीघ्र समझने वाले तथा चतुर हैं। इनसे अधिक उपयुक्त अन्य कोई व्यक्ति प्रतीत नहीं होता।'

शिवजी ने सहमति प्रकट की–'पुत्र! तुम्हारा चुनाव ठीक है। नन्दी को विविधप्रकार के रत्नाभूषण दो। आदेश-पालन के पश्चात् गणपति ने कहा–'नन्दीश्वर! वहाँ जाकर देवगण की मुक्ति का ही उद्देश्य ध्यान में रखें। जाइए, आपको सफलता प्राप्त हो।'

नन्दीश्वर ने शिव-शिवा और गणेश्वर को प्रणाम कर वायुवेग से प्रस्थान किया और उग्रेक्षण के सभाद्वार पर द्वारपाल को अपना परिचय देकर दैत्यराज से मिलने की बात कही। द्वारपाल ने जाकर सूचना दी तो उसने उन्हें बुला लाने की आज्ञा दे दी। नन्दीश्वर ने उस विशाल भव्य एवं सुसज्जित सभा में प्रवेश किया।

दैत्यों ने सूर्य के समान देदीप्यमान एवं सुदृढ़ काय नन्दीश्वर को देखा तो भयभीत हो गये। सभा में नीरवता छा गई। दैत्यराज का संकेत मिलने पर नन्दीश्वर उसे अभिवादन कर आसन पर बैठ गये। फिर उन्होंने कहा–'दैत्यराज! मैं अनेक राजसभाओं में जा चुका हूँ और सर्वत्र ही आगत व्यक्ति का सम्मान करने की नीति देखी। किन्तु तुम लोग अत्यन्त बलवान्, सुन्दर और ऐश्वर्य सम्पन्न होते हुए भी भेड़िये के समान बुद्धि रहित हो, इसलिए किसी बुद्धिमान् मनुष्य का आदर-सत्कार करना भी

नहीं जानते । यह धर्म केवल राजा का ही नहीं, अमात्यादि वर्ग एवं प्रजावर्ग का भी है । इससे स्पष्ट है कि तुम्हारी समस्त प्रजा, सभासद और अमात्यवर्ग भी मूर्ख ही हैं ।'

दैत्यराज ने कुछ विनम्रता से कहा–'वृषश्रेष्ठ ! तुम्हारी बुद्धि ब्रह्मा के समान, तेज अग्नि के समान और गति वायु के समान प्रतीत होती है । तुम कौन, कहाँ से आये और आने का क्या उद्देश्य है ?'

नन्दीश्वर बोले–'असुरराज ! मैं भगवान् शूलपाणि का वाहन एवं प्रमुख गण नन्दी हूँ । उनके यहाँ भगवान् गणेश ने धरती का भार उतारने के लिए अवतार धारण किया है । वे प्रभु सर्व समर्थ और समस्त संसार के उत्पत्ति, पालन और विनाश करने वाले हैं । उन्होंने अनेक दैत्यों का संहार किया है, यह तथ्य तुमसे छिपा नहीं है । इसलिए तुम्हें उनका अनुगत होना चाहिए । उनका सन्देश है कि तुम सब बन्दी देवगण को मुक्त कर दो ।'

'देवगण को मुक्त कर दूँ ? क्यों इसलिए कि वे पुनः सक्रिय हो जायें और हमारा अनिष्ट करने लगें ?' उत्तेजित हुए उग्रेक्षण ने प्रश्न किया ।

नन्दी ने कहा–'सभी को स्वतन्त्र रहने का अधिकार है । तुमने उन्हें बन्दी बनाकर अत्याचार किया है । अपने को संयत करके पुनः विचार कर देखो कि तुम जो कुछ कह रहे हो, वह न्याय है या अन्याय ?'

उग्रेक्षण–'मैं जो भी कुछ करता हूँ, वह सब न्याय है और उसमें हस्तक्षेप करने का किसी को कोई अधिकार नहीं है । अपने गणेश्वर से कहना कि अधिक उछल-कूद न करे । मेरी शरण में आ जाय तो उसे मृत्यु का भय नहीं रहेगा । अन्यथा वह मारा जायेगा ।'

नन्दी पुनः बोले–'दैत्यराज ! कहाँ वे सर्वात्मा एवं सर्वेश्वर प्रभु और कहाँ तुम सांसारिक प्राणी ! तुम्हारी उनसे कोई तुलना नहीं हो सकती । इसलिए मेरी बात मानकर उनकी आज्ञा का तिरस्कार न करो । जो देवता

तुम्हारे यहाँ बन्दी हैं, उन्हें मुक्त कर दो, अन्यथा व्यर्थ ही युद्ध में भीषण संहार उपस्थित होगा ।'

उग्रेक्षण कुछ क्रोध करता हुआ-सा बोला–'मैं तो तुम्हें बुद्धिमान् समझता था, किन्तु अब समझा कि तुम निरे बुद्धिहीन मूर्ख हो । अरे, जिन्हें बन्दी बनाया है उन देवताओं को मैं कैसे स्वतन्त्र कर सकता हूँ ? तुम मेरे पौरुष से अनभिज्ञ हो, इसलिए वैसी बातें करते हो । सोचो, भला किसी व्याघ्र के समक्ष शृगाल की क्या बिसात ?'

नन्दीश्वर हँस पड़े, बोले–'असुरराज! मूर्खों जैसी बात न कर अपने उन महापराक्रमी वीरों की ओर ध्यान दे, जो गणेश्वर के हाथों बात की बात में मार दिए गये । क्या वे तेरी अपेक्षा कम शक्तिशाली थे ? देख, नीतिकुशल वह है, जो समयोचित कार्य करे । तुझे भगवान गणेश्वर की आज्ञा मानकर अपने प्राणों की रक्षा करना ही कर्त्तव्य है ।'

दैत्यराज के नेत्र लाल हो गये, उसने क्रोधपूर्वक गर्जना करते हुए कहा–'मूर्ख बैल ! तू यहाँ शांतिदूत बनकर आया है या उपदेश देने ? मैं तुझे दूत समझकर ही कुछ नहीं कहता, अन्यथा तेरे प्राण ले लेता । अब उस दुधमुँहे बालक की प्रशंसा मेरे सामने नहीं करना ।'

नन्दीश्वर भी गर्ज उठे–'मूढ़ ! पापी ! अधम ! तेरी बुद्धि मारी गई और काल सिर पर सवार है, इसलिए व्यर्थ प्रलाप कर रहा है । तेरे मुख से मयूरेश्वर की निन्दा सुन अकेला मैं ही तुझे मार डालने में समर्थ हूँ, किन्तु स्वामी ने ऐसा करने की मुझे आज्ञा नहीं दी है ।'

यह कहकर नन्दीश्वर ने घोर हुंकार की, जिससे समस्त दैत्यसभा भयभीत हो गई । अनेक राक्षस अकारण ही मूर्च्छित हो गए और अनेक इधर-उधर छिप गए । यह देखकर घोर गर्जना करते ये नन्दीश्वर दैत्यसभा से उठकर वायु वेग से चल दिए ।

❀❀❀

७. सप्तम अध्याय

दैत्येश्वर उग्रेक्षण के साथ मयूरेश्वर का युद्ध आरम्भ

नन्दीश्वर ने शिव-शिवा की सेवा में उपस्थित होकर मयूरेश्वर से दैत्यसभा के समस्त समाचार कहे और अपने तथा दैत्यराज के मध्य हुई बातों से भी अवगत कराया । तब मयूरेश्वर ने शिवजी से आज्ञा लेकर प्रमथगणों और देवताओं आदि को दैत्यों पर आक्रमण करने का आदेश दिया । वे बोले–'अब यह स्पष्ट हो गया है कि युद्ध के बिना देवताओं का छुटकारा नहीं हो सकता । यद्यपि हम युद्ध नहीं करना चाहते थे, किन्तु दैत्येश्वर ने हमें विवश कर दिया है । अत: बिना किसी प्रकार का विलम्ब किए हमें चढ़ चलना चाहिए ।'

यह कहकर गणेश्वर ने सिंह गर्जना की और समस्त शिव-गणादि भी मयूरेश्वर की जय ! गणनायक की जय ! का घोष करते हुए युद्ध के लिए गण्डकी नगर की ओर बढ़ चले ।

उधर गुप्तचरों द्वारा आक्रमण का समाचार पाकर दैत्यराज ने सामना करने और शत्रुओं को आगे बढ़ने का आदेश दिया । तब दस करोड़ दैत्यों की चतुरंगिणी सेना नगर से बाहर आकर युद्ध करने लगी । प्रमथादिगण बड़ी वीरता, धैर्य और साहस से युद्ध कर रहे थे । दोनों ओर से अनेक प्रकार के मारक शस्त्रास्त्र प्रयोग में लाये जा रहे थे ।

असुरों पर शिवगण भारी पड़ रहे थे । दैत्यसेना कटती जा रही थी और धरती पर शवों का अम्बार लगता जा रहा था । धीरे-धीरे दैत्यों की विशाल सेना काल-कवलित हो गई तथा कुछ थोड़े से बचे-खुचे दैत्य उग्रेक्षण के पास जाकर बोले–'राजाधिराज ! शिवसेना ने हमारी विशाल

वाहिनी को समाप्त कर डाला और नगर की सीमा, बाह्य भागों, वनों, खेतों, जलाशयों एवं अन्यान्य महत्त्वपूर्ण स्थानों को अपने अधिकार में कर लिया है। हम बड़ी कठिनाई से अपने प्राण बचाकर युद्ध का समाचार देने आये हैं।'

उसे पहले तो उनकी बातों पर विश्वास ही नहीं हुआ और जब उसे विश्वास हो गया तो शोक के कारण प्रलाप करने लगा, 'देखो ! पतंगों के समान तुच्छ शिवगणों ने मेरी मन्दर-गिरि के समान विशाल एवं अजेय सेना को नष्ट कर डाला। अब क्या किया जाये ?'

अमात्यों ने उसे समझाया–'महाराज ! अभी हमारे पास असंख्य सैनिक और सब प्रकार के साधन उपलब्ध हैं। आप आज्ञा दीजिए, जिससे कि रणक्षेत्र में पुनः सेना भेजी जा सके। वे तुच्छ शिवगण अवश्य ही पराजित होंगे।

उग्रेक्षण ने कुछ प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा–'अच्छा, इस बार अधिक पराक्रमी वीरों की सेना भेजी जाय, उसकी संख्या भी पहले से अधिक रहे। मैं स्वयं भी रणक्षेत्र में पहुँचता हूँ।'

अब पहिले से अधिक विशाल दैत्यसेना रणभूमि में आ पहुँची। उग्रेक्षण स्वयं भी अश्व पर सवार होकर वहाँ पहुँचा और उसने वीरों को भीषण आक्रमण करने का आदेश किया। इस बार दैत्यगण प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध करने लगे। इसलिए शिवगणों के पाँव उखड़ गये और वे राक्षसों के सामने पीछे हटने के लिए विवश हो गये।

यह देखकर स्वयं मयूरेश्वर अपने वाहन मयूर पर सवार होकर युद्ध में आ डटे। शिवजी भी नन्दीश्वर पर आरूढ़ होकर युद्ध करने लगे। शिवगणों ने पुनः असुरों को काटना प्रारम्भ कर दिया। नन्दीश्वर ने उग्रेक्षण पर मुख से प्रहार किया तथा उसका घोड़ा मार डाला और उसका छत्र तोड़ दिया। इसलिए दैत्यराज दूसरे घोड़े पर बैठकर आया।

तभी उसके अमात्य कौस्तुभ और मैत्र नामक दो दैत्यों ने उसे विश्वास दिलाया—'असुरराज ! शत्रुओं को नष्ट किये बिना हम आपको अपना मुख नहीं दिखावेंगे । निश्चय मानिये कि हमें कोई भी परास्त नहीं कर सकता ।'

उग्रेक्षण ने चैन की साँस ली । युद्ध जोरों पर चल पड़ा । शिवगण असुरों का पराक्रम सहन करने में असमर्थ रहे, इसलिए विजय-श्री असुरों के ही गले पड़ी । मयूरेश की सेना बहुत दूर तक पीछे धकेल दी गई । विजयी दैत्यसेना विजयगीत गाती हुई नगर में पहुँची ।

अब वीरभद्र, नन्दीश्वर एवं मयूरेश परस्पर विचार करने लगे कि क्या किया जाये ? निश्चय हुआ कि शत्रु को अधिक सँभलने न देने के उद्देश्य से तुरन्त ही घोर आक्रमण किया जाये । वही किया गया और दोनों की सेनाएँ युद्ध में डट गयीं ।

घोर युद्ध हुआ । एक बार षड़ानन गणराज मूर्च्छित हो गये, किन्तु मैत्र और कौस्तुभ दोनों मारे गये एवं बहुत ही राक्षसी सेना का संहार हो गया । शेष सेना भाग खड़ी हुई । विजयी शिवगण 'मयूरेश्वर की जय' कहते हुए विजयोल्लास मनाने लगे ।

अपनी सेना को पराजित हुई देखकर दैत्यराज ने पुनः विशाल सेना के साथ रणाङ्गण में प्रवेश किया और घोर युद्ध करने लगा । उसके साथ अमर्षमय आदि सात महारथी भी आये थे, जिन्होंने पृथक्-पृथक् सात व्यूहों की रचना की ।

यह देखकर गणेश्वर स्वयं मयूर पर सवार हुए और नन्दी, पुष्पदन्त आदि वीरों के साथ उन व्यूहों को तोड़ने के उद्देश्य से बढ़े । दस लाख वीरों के साथ भूतनाथ शिव एवं विकट नामक वीर थे । वीरभद्र और षड़ानन के साथ भी असंख्य सैनिक थे । अति गतिवान, साहसी और विजय की इच्छा वाले अत्यन्त दुराधर्ष वीरों की सुरक्षित सेना पचास

सहस्त्र थी । इस प्रकार मयूरेश्वर-पक्ष में भी विशाल वाहिनियाँ थीं, जिनके सात व्यूह इधर भी बनाये गये थे ।

इस दिन बड़ा विकट संग्राम हुआ । शिव पक्ष के वीरों ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी, जिसके फलस्वरूप सातों दैत्य महारथी मारे गये । असुरों की ओर पराजय से सन्तप्त हुआ उग्रेक्षण भागकर अपनी राजधानी जा पहुँचा ।

उग्रेक्षण की पुनः पराजय

उग्रेक्षण अपनी बार-बार की पराजय से बहुत दुःखित हो रहा था । उसने सोचा–'मेरे वीर सैनिक सदैव देवताओं को दबाये रखने और मारने में समर्थ थे, वे आज भुनगों और मच्छरों के समान मार डाले गये ? यह विपरीत बात कैसे देखने-सुनने में आ रही है ? अब देखो, शिवगणों का मद और उत्साह कैसे बढ़ गया है ? जैसे भी हो, उनको वश में करना ही होगा ।'

अमात्यों से परामर्श लिया तो उन्होंने उसे धीरज रखने की बात कहकर आश्वस्त किया और पुनः विशाल सेना के साथ युद्ध में जाने का प्रोत्साहन देते हुए बोले--'राजाधिराज ! आप चिन्तित न हों, 'जब तक श्वास, तब तक आस' वाले सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए ही कार्य करें । आपकी विजय निश्चित है ।'

उग्रेक्षण ने इस बार और भी अधिक तैयारी की और पुनः विशाल सेना के सहित युद्ध-क्षेत्र में पहुँच गया । उसने जाते ही तीक्ष्ण बाणों की वर्षा आरम्भ की और कुछ ही देर में अधिकांश शिवगणों को पराजित कर दिया । वे अत्यन्त विह्वलता से इधर-उधर भाग निकले । इस प्रकार शिवसेना का अपकर्ष दिखाई देने लगा ।

अब यह घोड़े से नीचे उतर आया तथा भयङ्कर बाण-वर्षा करने

लगा। उसने वीरभद्र को पाँव पकड़कर उठाया और चारों ओर घुमाकर धरती पर दे मारा। इससे वे बुरी तरह आहत पीड़ित हो गये। फिर उसने नन्दीश्वर के मस्तक पर शस्त्र प्रहार किया, जिससे उनके मस्तक से लोहित धारा निकलने लगी।

उग्रेक्षण वस्तुतः उग्र हो उठा। उसने पुष्पदन्त, हिरण्यगर्भ, श्यामल, चपल, रक्तलोचन, सुमुख, भृंगी आदि अनेक प्रमुख शिवगण और देवगण आदि को बुरी तरह आहत कर दिया। वे सभी रणविमुख हो गये, केवल मुनिकुमारों के साथ गणेश्वर ही युद्ध कर रहे थे।

उसने सोचा—'समस्त विग्रह की जड़ यही बालक है। इसका वध होते ही शिवगणादि पराजित हो जायेंगे। फिर कोई भी युद्ध करने का साहस न करेगा। इसलिए सर्वप्रथम इसी को समाप्त करना चाहिए।'

ऐसा विचार कर उग्रेक्षण विनायक की ओर क्रोधपूर्वक बढ़ा। उसकी गर्जना का उत्तर गर्जना से मिला तो उसने भयंकर बाण-वर्षा आरम्भ कर दी। मयूरेश्वर ने उसके सभी बाण काट डाले और अपने बाणों से उसे पीड़ित करने लगे।

दैत्यराज ने भगवान् भास्कर का स्मरण किया और सूर्य-प्रदत्त दिव्यास्त्र को धनुष पर चढ़ाकर मयूरेश पर छोड़ दिया। किन्तु गणेश्वर के परशु प्रहार से उसके हजारों टूक हो गये। उसके हाथ के भी सैकड़ों खण्ड हुए और धनुष धरती पर आ गिरा।

अब उसने चक्र चलाया, वह भी गणेश्वर द्वारा प्रक्षेपित शूल से टकराकर दैत्यराज के ही मस्तक पर आ गिरा। इससे उसके कानों सहित कुण्डल पृथक् हो गए तथा वह शूल कान, कुण्डल और मुकुट के सहित गणेश्वर के पास लौट आया।

उग्रेक्षण को शूल के इस प्रभाव पर बड़ा आश्चर्य हुआ और भयभीत एवं आशंकित होते हुए भी उसने क्रोध प्रदर्शित किया—'मूर्ख! तू इस

सामान्य कार्य को दुस्तर समझता है ! तूने मेरे कान काटे हैं तो मैं तेरी नाक उड़ाए देता हूँ । ले, देख मेरा पराक्रम ।'

यह कहकर वह खड्ग तानकर मयूरेश पर झपटा । किन्तु जब उसे सर्वत्र मयूरेश ही मयूरेश दिखाई देने लगे । सब ओर असंख्य मयूरेश अट्टहास कर रहे थे । उसका साहस टूट गया और पलायन के विचार से अपने दुर्ग में लौटने का विचार किया, किन्तु उस ओर भी बहुत से मयूरेश अट्टहास करते प्रतीत हुए । भय के कारण नेत्र बन्द किए तो हृदय में भी मयूरेश ही दिखाई दिए ।

फिर वह रणांगण छोड़कर भाग निकला और घर जाकर चुपचाप मुख ढाँपकर लेट गया । यह देखकर उसकी महासुन्दरी पत्नी दुर्गा ने कोमल वाणी में पूछा–'प्राणनाथ ! आज आप ऐसे चिन्तित और म्लान- मुख क्यों हो रहे हैं ? यदि इसका कुछ कारण बतायें तो सम्भव है कि कुछ उपाय मुझे ही सूझ जाय और मैं आपकी सहायता कर पाऊँ ।'

दैत्यराज ने पत्नी को बताया–'प्रिये ! आज मुझे युद्धक्षेत्र से भागना पड़ा । यद्यपि मैंने सात करोड़ देवगण और शिवगण को धराशायी कर दिया, तो भी शंकर के पुत्र ने, जो कि अभी बालक ही है, अपने शूल से मेरे दोनों कान काट डाले । समझ में नहीं आता कि उसे मारने के क्या उपाय करूँ ?'

दुर्गा ने विनयपूर्वक कहा–'स्वामिन् ! यदि अपराध क्षमा हो तो कुछ निवेदन करूँ ? कहीं आप रुष्ट न हो जायें, इस भय से यथार्थ बात कहने में कुछ संकोच हो रहा है ।'

दैत्यराज के आग्रह पर **दुर्गा** ने पुनः कहना आरम्भ किया–'नाथ ! देव, ब्राह्मण और गौ से द्वेष करने पर न तो स्थायी सुख मिलता है और न कल्याण ही होता है । संसार में निन्दा भी होती है । यद्यपि कोई सामने

नहीं कहता, पर पीठ-पीछे तो सब कहते ही हैं । मेरे मत में इनकी सदैव पूजा और वन्दना करनी चाहिए ।'

'अशुभ कर्मों का फल शुभ नहीं मिल सकता । लोक में प्रत्यक्ष देखा जाता है कि जैसा बीज बोते हैं, वैसा ही अंकुर उत्पन्न होता है । आपके अनुपम पुरुषार्थ ने विश्व को अधीन कर दिया, किन्तु उस पुरुषार्थ ने विश्व को अधीर कर दिया, किन्तु उस पुरुषार्थ का प्रयोग देवताओं और ऋषियों के उत्पीड़न में ही हुआ है । पुरुषार्थ के चार विषय हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । आपने उसे धर्म और मोक्ष से विरत ही रखा है । वस्तुतः पुरुषार्थ वह है जिससे पराये धन और परायी स्त्री को लोलुपता उत्पन्न न हो । अनिन्द्य की निन्दा करना भी पुरुषार्थ नहीं है ।'

'इसलिए हे प्राणेश्वर ! आप मेरे वचनों पर ध्यान दीजिए—सभी देवताओं को मुक्त करके जगदीश्वर गणराज की शरण में जाइए । वे प्रभु आपको अवश्य क्षमा कर देंगे । यदि आप मेरे निवेदन को न मानेंगे तो निर्विघ्न सुख से निश्चित ही वञ्चित हो जायेंगे । आपको हठ छोड़कर सुख रूप पुरुषार्थ की सिद्धि करना ही श्रेयस्कर होगा ।'

अपनी सहधर्मिणी के वचन उसे विषयुक्त तीर के समान प्रतीत हुए और वह लाल नेत्रों से उसकी ओर देखता हुआ बोला—'मैं तो तुम्हें बहुत चतुर समझता था प्रिये ! किन्तु तुमने तो मुझे वीर-कर्म से विमुख करने और उत्साह भंग करने वाली बात कह दी है । तुम्हारे वचन मानकर तो मुझे सर्वत्र अपयश ही प्राप्त होगा । शत्रु कितना भी प्रबल हो, उसकी मन से भी प्रशंसा करना अथवा संग्राम छोड़कर आत्मसमर्पण करना तो अत्यन्त ही निन्दनीय कर्म है, इससे तो मर जाना ही अच्छा है ।'

'क्या तुम नहीं जानतीं कि वीरों का कर्त्तव्य युद्ध है । क्योंकि युद्ध में जीतने से तीनों लोकों की ख्याति, सम्मान और ऐश्वर्य प्राप्त होगा तथा युद्ध में मरने से स्वर्ग मिलेगा । यदि मैं युद्ध से घबराकर शत्रु की शरण लूँगा तो मरने के बाद मुझे पूर्वजों सहित नरक की प्राप्ति होगी ।'

'फिर एक रहस्य की बात तुम्हें और बताता हूँ—मैं जगद्गुरु देवाधिदेव गणेश्वर को भले प्रकार जानता हूँ। उनका अवतार मुझे मोक्ष प्रदान करने के लिए उसी प्रकार हुआ है जैसे लंकेश्वर रावण को मुक्त करने के लिए श्रीराम का अवतार हुआ था, किन्तु यह सब जानते हुए भी मैं काल को तुच्छ मानता हूँ। संसार में मेरे समान कोई भी योद्धा नहीं है, इसलिए युद्धक्षेत्र में गणेश्वर का सिर अवश्य काटूँगा, फिर चाहे कुछ भी क्यों न हो!'

कल-विकल असुरों का संहार

यह कहकर उसने राजसी पोशाक धारण की और राजसभा में जाकर कल और विकल नामक दो महावीरों से बोला—'कल! विकल! दोनों मेरी बात सुनो। इस समय इन समस्त योद्धाओं में तुम ही अधिक दुराधर्ष हो। अपने साथ विशाल सेना ले जाओ और शत्रुओं का वध कर दो। शिवपुत्र मयूरेश को भी जीवित या मृत मेरे समक्ष उपस्थित करो।'

वे दोनों विशाल दैत्यसेना के साथ रणक्षेत्र में जा पहुँचे। किन्तु घोर संग्राम के पश्चात् भी विजय प्राप्त न कर सके। आरम्भ में शिवगण और देवगण उनका प्रहार न सह पाये, किन्तु बाद में पुष्पदन्त और नन्दीश्वर के प्रहारों से दैत्यसेना पीड़ित होने लगी और अन्त में वीरभद्र ने कल और षडानन ने विकल को प्राण-विहीन कर दिया। इस युद्ध में भी असुरदल का संहार वेग से हुआ। बची सेना रणांगण छोड़कर भाग गई।

कल और विकल की मृत्यु का समाचार पाकर उग्रेक्षण बहुत दुःखित हुआ। वह सोचने लगा—'मेरे सभी प्रधान शूरवीर सेनापति इस युद्ध में मारे गये। अब शत्रु का सामना करने के लिए किसे भेजा जाय?' वह बहुत विचार करने के बाद भी कुछ स्थिर नहीं कर सका, तभी उसकी मनः-स्थिति समझकर उसके धर्म और अधर्म नामक दो पुत्रों ने कहा—'पिताजी! हमारे सभी प्रमुख सैनिकों ने रणांगण में अद्भुत वीरता

दिखाकर मोक्ष प्राप्त कर ली । अब आप हमें युद्धक्षेत्र में जाने की आज्ञा दीजिए । हमें विश्वास है कि शत्रुसेना को वश में करके मयूरेश का वध करने में हम अवश्य सफल होंगे ।'

उग्रेक्षण ने आज्ञा दे दी तो दोनों भाई विशाल चतुरंगिणी सेना लेकर युद्धक्षेत्र में जा पहुँचे । दोनों ओर से घोर संग्राम होने लगा । दैत्यराज के दोनों पुत्र अत्यन्त बलवान् थे । उन्होंने वीरभद्र, हिरण्यगर्भ, भूतराज और मयूरेश्वर की सेना को बुरी तरह आहत किया । यह देखकर मयूरेश्वर ने उन दोनों को एक साथ ऊपर उठाया और आकाश में चक्र के समान घुमाकर धरती पर फेंक दिया । दोनों के ही सैकड़ों खण्ड हो गये । तभी विजयोल्लास से ऋषिगण और शिवगण 'गणेश्वर की जय' का घोष करने लगे । पराजित दैत्यसेना ने भागकर अपने राजा को समाचार दिया—'राजाधिराज ! आपके पुत्र बड़ी वीरता से लड़े थे, किन्तु मयूरेश के सामने उनकी एक न चली और वे मारे गये । उनके साथ जो विशाल सेना थी, वह भी रणक्षेत्र में काम आ गई ।'

दैत्यों में शोक छा गया । रानी दुर्गा ने सुना तो राजसभा में ही जाकर रोती हुई बोली—'प्राणनाथ! मेरे पुत्रों को आपने मुझसे बिना पूछे ही रणक्षेत्र में भेज दिया । यदि वे मेरा आशीर्वाद लेकर जाते तो उन्हें विधाता भी नहीं मार सकता था ।' दैत्यराज ने उसे बहुत प्रयत्न से समझाकर अन्तःपुर में भेजा और स्वयं वीरवेश धारण कर विशाल असुर सेना के सहित रणांगण में जा पहुँचा और उसने तुरन्त ही मारकाट आरम्भ कर दी । अनेक शिवगण काम आ गये ।

वीरभद्र ने मयूरेश से कहा—'प्रभो ! उग्रेक्षण पुनः आकर भीषण संहार में प्रवृत्त है । इस बार तो बहुत ही उग्र हो उठा है । आप स्वयं उसका निवारण कीजिए ।'

गणेश्वर ने अपने वाहन मयूर को बुलाया और उसपर आरूढ़ होकर दैत्यराज के समक्ष पहुँचे । उग्रेक्षण ने माया का आश्रय लिया तो मयूरेश

ने उसकी समस्त माया नष्ट कर दी और फिर उसके अनुयायी असुरों का संहार प्रारम्भ कर दिया । धीरे-धीरे विशाल दैत्य-सेना समाप्त हो गई । मयूरेश के प्रहारों के समक्ष उग्रेक्षण का पौरुष काम न कर सका । वह रणक्षेत्र से भागकर अपने भवन में जा पहुँचा ।

दैत्येश्वर उग्रेक्षण का वध

इधर विजयी शिवगण अपने स्थान पर आ गये । शिव-शिवा ने मयूरेश से विश्राम करने का आग्रह किया तभी देवर्षि नारद बोल उठे—'माता पार्वती जी ! मुझे यहाँ पड़े-पड़े बहुत दिन व्यतीत हो गए । पूजा-पाठ-भजनादि नित्यकर्म भी मैं ठीक प्रकार से नहीं कर पाता । अभी भी उग्रेक्षण का वध शीघ्र सम्भव नहीं लगता और जब तक उसका वध नहीं होगा तब तक देवगण मुक्त नहीं होंगे और न गणेश जी का विवाह ही हो पायेगा । इसलिए मैं तो अब यहाँ से जाने की आज्ञा चाहता हूँ ।'

तभी नन्दी आदि ने कहा—'देवर्षे ! आप तो सर्वगुण सम्पन्न हैं, फिर गणेश्वर की महिमा से अनभिज्ञ रहते हैं । आप शीघ्र ही दैत्यराज का वध हुआ देखेंगे ।'

मुनि बोले—'मैं तो तभी समझूँगा जब उसका वध हो जायेगा । अन्यथा अनुमान कितने ही लगाते रहो ।'

तब स्वयं गणेश्वर ने कहा—'मुनिवर ! मैं आपका मन्तव्य समझ गया हूँ । विश्वास कीजिए कि अब बिना अधिक विलम्ब के ही असुरपति मारा जायेगा ।'

नारदजी चुप हो गए । मयूरेश ने शिवगणों को आज्ञा दी कि 'आज ही गण्डकी नगर पर आक्रमण कर दिया जाय ।' आदेश सुनते ही समस्त सेना ने प्रस्थान कर दिया । युद्ध के बाजे बजते जा रहे थे और वीर गर्जना कर रहे थे । इस कारण समस्त धरती और दिशाएँ कम्पायमान हो रही थीं ।

समस्त सेना तीव्रगति से गण्डकी नगर में जा पहुँची तथा मयूरेश के चारों गण राक्षसराज के दुर्ग पर जा चढ़े । इस समाचार को सुनते ही उग्रेक्षण काँप उठा । उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि अब किस प्रकार बचाव किया जाय । तभी उसकी सहधर्मिणी दुर्गा ने रोते हुए कहा–'स्वामिन् ! आपने मेरी बात नहीं मानी । यदि मान लेते तो ऐसा विनाश नहीं होता । दोनों पुत्र मारे गये और समस्त सेना नष्ट हो गई । अब आपके अपने प्राणों पर आ बनी है । अब भी समय है, अपने प्राणों की रक्षा तो हो ही सकती है । फिर भी नहीं मानना चाहते तो चिन्ता करने से कोई लाभ नहीं होगा ।'

रानी दुर्गा इस प्रकार कह रही थी कि तभी राजभवन के स्वर्ण-रत्न निर्मित शिखर पर भृङ्गी उड़कर जा बैठे और फिर सभा-मण्डप के स्तम्भों को उखाड़-उखाड़ उनको तोड़ने और टुकड़ों को चारों ओर बिखेरने लगे । यह देखकर हजारों असुर 'मारो–मारो' पुकारते हुए, अस्त्र-शस्त्र हाथ में उठाये हुए उनकी ओर दौड़े । भृङ्गी वीर तो उनकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे । उन्होंने कुछ ही देर में असुरों को धराशायी कर दिया ।

अब उन्होंने कुछ देर प्रतीक्षा की, किन्तु कोई भी असुर सामने नहीं आया । तब वे उग्रेक्षण के भवन में घुस गये और उन्होंने दैत्यराज को विश्राम करते देखा । वह सोने का बहाना बनाकर नेत्र मूँदे पड़ा था, इसलिए उन्होंने उसके कान और केश खींचने आरम्भ किये । विवश हुआ दैत्यराज उठकर बाहर आ गया और उसने भृङ्गी गणों को अपने आघातों से व्याकुल कर दिया ।

शिव-सेना बहुत आगे बढ़ आई थी । उग्रेक्षण ने भी भयंकर युद्ध कर सेना को पीछे हटने को विवश कर दिया । तभी सहसा उसे मयूरेश के विराट् रूप के दर्शन हुए । उनका मस्तक अन्तरिक्ष में, चरण पाताल में तथा कान सब दिशाओं में फैले हुए थे, उनके हजार मस्तक, हजार नेत्र, हजार हाथ और इतने ही चरण थे ।

इस रूप के दर्शन करके उसे भगवान् भास्कर के वे वचन याद आ गये, जिनके अनुसार ऐसे ही दिव्य पुरुष के द्वारा मृत्यु होनी थी । वह समझ गया कि अन्तकाल समीप है । फिर भी उसने समर्पण की अपेक्षा युद्ध करना ही उचित समझा और भयानक अस्त्रों से प्रहार करने लगा । किन्तु मयूरेश ने उनके सभी शस्त्रास्त्र काट गिराये ।

अब वे मयूर से उतरे और उन्होंने पवित्र जल से आचमन करके अमृत-बीज युक्त मन्त्र का जप करते हुए अत्यन्त तेजस्वी परशु को अभिमन्त्रित किया तथा दैत्यराज के सामने जाकर उसकी नाभि पर प्रहार किया तब अपने घोर शब्द द्वारा त्रैलोक्य को गूँजता हुआ वह परशु नाभि में जा घुसा, जिससे अमृतस्थली ध्वस्त हो गई और वह तुरन्त ही धराशायी हो गया ।

दैत्यराज के मरते ही सर्वत्र उल्लास छा गया । मुनिगण, देवगण आदि सभी निर्भय हो गये । आकाश में अप्सराएँ नाचने और पुष्प-वर्षा करने लगीं । सभी दिशाएँ स्वच्छ हो गईं । धरती फूल उठी । देवता, ऋषि-मुनि आदि सब मयूरेश की स्तुति करने लगे–

"परब्रह्मरूपं चिदानन्दरूपं
सदानन्दरूपं सुरेशं परेशम् ।
गुणाब्धिं गुणेशं गुणातीतमीशं
मयूरेशमाद्यं नताः स्मो नताः स्मः ॥
जगद्वन्द्यमेकं परोपकारमेकं
गुणानां परं कारणं निर्विकल्पम् ।
जगत्पालकं हारकं तारकं तं
मयूरेशमाद्यं नताः स्मो नताः स्मः ॥"

'जो प्रभु परब्रह्म, चिदानन्द, सदानन्दस्वरूप, सभी देवताओं के अधीश्वर, परमेश्वर, गुणों के समुद्र एवं गुणों के स्वामी किन्तु गुणों से परे

हैं, उन आदिदेव परमात्मा मयूरेश को हम नमस्कार करते हैं। जो संसार भर के एकमात्र वन्दनीय, एकमात्र ओंकार, गुणों के परम कारण, कल्प रहित, विश्वपालक, संहारक और उद्धार करने वाले हैं, उन आदिदेव मयूरेश को हम नमस्कार करते हैं।

हे गजानन ! हे गणराज ! वस्तुतः हम आपके योग्य सुन्दर स्तवन में समर्थ नहीं हैं। आप समस्त गुणों के भण्डार और सम्पूर्ण विश्व के प्रेमपात्र हैं। आपके गुणों का वर्णन करने की हममें शक्ति नहीं है। आपका संसार-रचना का क्रम समुद्र के समान अपार और अकथनीय है। हे प्रभो ! आपने अपने वचन का निर्वाह कर दिया तथा समस्त दैत्यों का संहार कर देवताओं और ऋषि-मुनियों को सुखी बना दिया।'

स्तुति करके देवगण अपने धाम को चले गये। इधर अपने पुत्र मयूरेश के द्वारा दैत्यराज के मरने का समाचार सुनकर माता पार्वती अत्यन्त आनन्दित हो उठीं। शिवजी के साथ वे तुरन्त अपने पुत्र के पास पहुँचीं और उन्हें अपने हृदय से लगा लिया। शिवगण मयूरेश्वर का जयघोष करने लगे।

❀❀❀

८. अष्टम अध्याय

मयूरेश का सिद्धि-बुद्धि के साथ पाणिग्रहण

उग्रेक्षण की मृत्यु का समाचार मिलते ही माता-पिता छाती पीटने लगे। रानी दुर्गा के करुण-क्रन्दन से दैत्य नगरी में सर्वत्र शोक छा गया। दैत्यराज के लिए चन्दन-चिता तैयार की गई और रानी दुर्गा भी अपने पति के साथ सती हो गई।

तदुपरान्त उग्रेक्षण के पिता चक्रपाणि उस नगरी के राजा हुए। विष्णु आदि सब देवताओं को मुक्त कर दिया तथा भगवान् मयूरेश की सेवा में उपस्थित होकर उनकी स्तुति की और फिर निवेदन किया–'प्रभो ! आप ही समस्त चराचरमय विश्व के उत्पत्ति, पालन और संहारकर्त्ता हैं।' आपकी माया से मोहित हुए जीव आपको जान नहीं पाते। आज आपके दर्शनों का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है। इस कारण हमारा जीवन सफल हो गया है।'

मयूरेश ने प्रसन्न होकर कहा–'राजन्! तुम्हारे पुत्र को मैंने विवश होकर मारा है। परन्तु उसे मोक्ष की प्राप्ति हो गई है। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, इसलिए इच्छित वर माँग लो।'

चक्रपाणि बोले–'नाथ ! यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरे भवन और नगर को पवित्र करने की कृपा कीजिए।' प्रार्थना सुनकर मयूरेश अपने गणों के सहित गण्डकी नगर में पधारे, जहाँ राजसभा में विद्यमान सभासदों, प्रजाजनों, मुक्त हुए विष्णु आदि देवताओं ने उनका स्वागत किया। वे स्वर्ण-रत्न निर्मित भव्य सिंहासन पर विराजमान हुए अत्यन्त शोभामय प्रतीत होते थे।

इन्द्र का मान भंग

राजा चक्रपाणि ने मयूरेश का पूजन किया और स्तुति करते हुए बोले–'नाथ ! आज मेरा जीवन, मेरा भवन, नगर और सभी प्रजाजन धन्य हो गये। जिन परमात्मा के दर्शन अनेक जन्मों में तपस्या करके भी ऋषि-महर्षिगण प्राप्त नहीं कर पाते, उनके मुझे साक्षात् दर्शन हो रहे हैं।'

तभी भगवान् मयूरेश की माया से मोहित हुए इन्द्र ने कुपित होकर कहा–'राजन्! तुमने सब बड़े-बड़े देवताओं की उपस्थिति में एक बालक की प्रथम पूजा करके अपनी मूर्खता का परिचय दिया है।'

चक्रपाणि बोले–'देवराज ! यद्यपि आप, रुद्र, सूर्य, वायु, वरुण, कुबेर, अग्नि आदि समस्त देवताओं को मेरे पुत्र ने हरा दिया। उसके भय से समस्त देवता, सिद्ध, गन्धर्व, ऋषि-मुनि आदि यत्र-तत्र छिपे रहे। भगवान् विष्णु तक अपने अनुयायी देवताओं सहित बंदी बना लिए गये। किन्तु परमात्मा मयूरेश ही समस्त वीरों सहित मेरे पुत्र का संहार करने में समर्थ हुए। इन्होंने उसके यहाँ बन्दी देवताओं को मुक्त कराया। इस कारण मैं तो इन्हीं को प्रथमपूजा का अधिकारी समझता हूँ।'

इन्द्र का समाधान न हुआ देखकर मयूरेश ने घोर गर्जन किया, जिससे समस्त ब्रह्माण्ड काँप उठा। ऐसा लगा मानो ब्रह्माण्ड विदीर्ण हो जायेगा। उससे असंख्य प्राणी मूर्च्छित हो गए। सूर्य के समान प्रकाश से विश्व व्याप्त हो गया तदुपरांत देवताओं ने मयूरेश के रूप में दसभुजी गजानन भगवान् के साक्षात् दर्शन किए।

फिर तुरन्त ही दसभुजी गजानन के स्थान पर मध्य में पद्मासन पर विराजमान वक्रतुण्ड, अग्निकोश में शिवजी, नैर्ऋत्य में सूर्य, वायव्य में पार्वती जी और ईशान कोण में बैठे भगवान् नारायण के दर्शन हुए। इससे समस्त देवगण भ्रमित हो गये।

तभी आकाशवाणी हुई–'परमपिता परमात्मा गजानन ही पाँच रूपों में प्रकट होते हैं। वे सभी विघ्नों के नाशक तथा देवता, मनुष्य, यक्ष, राक्षस और नाग सभी के पूज्य हैं। केवल इनकी पूजा से ही समस्त देवों की पूजा सम्पन्न हो जाती है। इसलिए भेदबुद्धि का त्याग करना ही श्रेयस्कर है।'

तभी सब देवताओं ने भगवान् मयूरेश के ओंकार रूप के दर्शन किए। इससे उनका भ्रम तुरन्त दूर हो गया और सब उच्च स्वर से 'मयूरेश की जय' बोलने लगे। फिर सभी देवताओं ने उनका श्रद्धा-भक्ति सहित पूजन किया। राजा चक्रपाणि ने भी उनका षोड़शोपचार पूजन कर स्तुति की।

इसके अनन्तर नारदजी ने कहा–'भगवान् मयूरेश ने प्रतिज्ञा की थी कि समस्त देवताओं को बन्धन-मुक्त कराने के पश्चात् ही विवाह करूँगा।' इनकी वह प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी है। अतएव अब सिद्धि-बुद्धि का विवाह इनके साथ होना शेष है। अतः कमलोद्भव ब्रह्माजी शीघ्र ही उस कार्य को भी सम्पन्न कर दें।'

ब्रह्माजी प्रसन्न हुए उन्होंने अपनी दोनों पुत्रियों का विवाह मयूरेश के साथ कर दिया। फिर विदा करते हुए हाथ जोड़कर निवेदन करने लगे–'प्रभो! आज मेरी अभिलाषा पूर्ण हो गई। इन पुत्रियों का पालन मैंने बड़े लाड़-प्यार से किया है, अब इनकी रक्षा आप स्वयं करते रहें।'

मयूरेश ने ब्रह्माजी की बात स्वीकार की। तभी दैत्यराज के यहाँ बन्दी देवताओं ने प्रार्थना की–'प्रभो! आपकी कृपा से हम बन्धन मुक्त हो गये, इसलिए अब हमें स्वधाम गमन की आज्ञा दें।'

मयूरेश ने देवताओं और ऋषि-मुनियों के प्रति आदर भाव प्रदर्शित करते हुए जाने की आज्ञा दे दी और वे सब उनका जय-जयकार करते हुए अपने-अपने स्थानों को चले गये।

लीला का संवरण

कुछ दिन राजा चक्रपाणि का आतिथ्य ग्रहण करने के पश्चात् मयूरेश ने भी शिव-शिवा और अपनी भार्याओं सहित अपने स्थान पर जाने की इच्छा प्रकट की तो राजा ने बेमन से उसे स्वीकार कर पर्याप्त भेंट आदि के साथ विदा किया। वे स्वयं उन्हें नगर के बाहर एक योजन दूर तक पहुँचाने आये। उनके साथ सभी नागरिक भी थे। मयूरेश को विदा करते समय सभी की आँखें अश्रूपूर्ण हो रही थीं। वे बोले–'प्रभो! आप हम सेवकों को छोड़कर जा रहे हैं, किन्तु हमें आपका वियोग असहनीय हो रहा है। हमारे ऊपर सदैव आपकी दया बनी रहे।'

मयूरेश ने चक्रपाणि और उनके समस्त प्रजाजनों को समझाया–'आप लोग निश्चिंत रहें । मेरी कृपा से आपको समस्त सुखों की प्राप्ति होगी । मेरे स्मरण मात्र से सभी सङ्कट दूर हो जाया करेंगे ।'

इस प्रकार आश्वासन देकर मयूरेश अपने नगर को चले । उनके साथ शिव-शिवा, ब्रह्मा, विष्णु आदि प्रमुख देवता भी थे । प्रमथादि गण उनका जय-जयकार करते चल रहे थे, निश्चित अवधि में गन्तव्य स्थान पर पहुँचकर सभी ने विश्राम किया और कुछ दिन बात-की-बात में निकल गए ।

दोनों बहुओं को पाकर पार्वती जी बहुत प्रसन्न थीं । वे भी उनकी बहुत सेवा करतीं तथा आशीर्वाद पाती थीं । शिवगण भगवान् मयूरेश को प्रसन्न करने का सदैव यत्न करते रहते ।

तभी एक दिन शिव-शिवा, ब्रह्मा, विष्णु आदि के समक्ष मयूरेश ने गम्भीर वाणी में कहा–'देवगण ! मैं एक महत्त्वपूर्ण बात कहता हूँ, आप ध्यान देकर सुनें । मैंने जिस उद्देश्य से धरती पर अवतार लिया था, वह कार्य सम्पन्न हो गया है ।'

'असुरों के मरने से पृथ्वी का भार भी उतर चुका और दैत्य के कारागार में बन्धनग्रस्त देवता भी मुक्त हो गये । स्वाहा, स्वधा और वषट्कार भी पहिले के समान निःशङ्क रूप से हो रहे हैं । इसलिए मेरे अवतार का प्रयोजन पूर्ण होने पर मेरा कोई शेष नहीं रहा और मेरे स्वधाम गमन का अवसर आ गया है ।'

यह सुनकर दुःखित हुए देवताओं ने सजल नेत्रों से कहा–'प्रभो ! आप हमें त्यागकर क्यों जा रहे हैं ? अब यदि पुनः दैत्य उत्पन्न हो गए तो हमारी रक्षा किस प्रकार होगी ?'

'चिन्ता न करो' मयूरेश ने आश्वासन दिया–'जब कोई संकट उपस्थित हो तब मुझे याद करना, मैं तुम्हारी सदैव रक्षा करूँगा ।'

माता पार्वतीजी को उनके वचन सुनकर मूर्च्छा ही आ गई । बोलीं–'पुत्र ! तुम्हारे बिना कैसे जीवित रहूँगी ? मुझे छोड़कर कहीं न जाओ ।'

मयूरेश ने समझाते हुए कहा–माता ! मैं भी तुम्हारे वियोग से दुःखित हूँ । किन्तु सदैव एक स्थान पर नहीं रह सकता, इसलिए विवश हूँ । जब द्वापर में मुझे एक भयानक असुर को मारने के लिए अवतार लेना होगा, तब तुम्हारे पुत्र रूप से प्रकट होकर पुनः सुख प्रदान करूँगा ।'

तभी षडानन ने रोते हुए कहा–'मुझे भी साथ ले चलो ।' इसपर उन्होंने अपना मयूर षडानन को प्रदान करते हुए कहा–'मयूरध्वज, मैं सभी के अन्तर में निवास करने वाला होने के कारण हृदय में भी सदैव विद्यमान रहता हूँ । इसलिए मुझे निरन्तर अपने साथ समझो ।' ऐसा कहकर गणेश्वर वहीं अन्तर्धान हो गये ।

❁❁❁

सप्तम खण्ड

१. प्रथम अध्याय

सिन्दूरासुर की उत्पत्ति

द्वापर युग चल रहा था। ब्रह्माजी निद्राग्रस्त थे, उस समय शूलपाणि उमानाथ ब्रह्मलोक में पधारे। चतुरानन की नींद खुली और उन्होंने एक जँभाई ली। तभी उनके मुख से एक अत्यन्त भयंकर पुरुष प्रकट हो गया। उसकी घोर गर्जना से समस्त दिशाएँ काँप उठीं। दिक्पाल आश्चर्य में भर गए और शेषनाग क्षुब्ध होकर विष-वमन करने लगे। समस्त प्राणी भय और आशंका से अत्यन्त व्याकुल हो गये थे।

उस भयंकर पुरुष का वर्ण अत्यन्त लाल था। उसके सुन्दर एवं अनुपम शरीर से सुगन्ध निकलकर वातावरण को सुरभित बना रही थी। वह तुरन्त ही ब्रह्माजी के समक्ष विनीत भाव से आ खड़ा हुआ। पद्मयोनि उसे देखते ही विस्मय में भर गये, पूछने लगे–'तुम कौन हो? कहाँ, कैसे उत्पन्न हुए और क्या चाहते हो?'

वह पुरुष विनयपूर्वक बोला--'प्रभो! आप सर्वज्ञ एवं समस्त ब्रह्माण्ड के उत्पन्न करने वाले हैं। फिर भी आप अनजान के समान मुझसे यह प्रश्न क्यों कर रहे हैं? आपने जँभाई ली तभी आपके मुख से उत्पन्न हुआ आपका पुत्र। इसलिए आप मुझे पुत्र रूप में स्वीकार कर मेरा नामकरण कीजिए। फिर मुझे रहने का स्थान और आहार दीजिए। मेरा क्या कर्त्तव्य हो यह भी निर्देश कीजिए।'

ब्रह्माजी उसके सौन्दर्य और विनीत भाव पर मुग्ध एवं प्रसन्न थे। वे बोले–'पुत्र! तू अत्यन्त अरुण अंग कान्ति वाला होने के कारण 'सिन्दूर' नाम से कहा जायेगा। तुझमें तीनों लोकों को वश में करने की अद्भुत

सामर्थ्य होगी । तुझे पंचभूतों, देवताओं, दानवों, यक्षों और मनुष्यों से किसी प्रकार का भय नहीं होगा । इन्द्रादि लोकपाल भी तेरा कुछ न बिगाड़ सकेंगे । दिन हो या रात्रि, तुझे भय की प्राप्ति नहीं होगी ।'

पुत्र ने आज्ञाकारी सेवक की भाँति मस्तक झुकाया । ब्रह्माजी उससे और भी सन्तुष्ट हुए । उन्होंने पुनः कहा–'बेटा ! तुझे किसी भी सजीव या निर्जीव वस्तु से भय नहीं होगा । जब तू क्रोधपूर्वक किसी को भी अपनी विशाल भुजाओं में जकड़ लेगा तब उसके शरीर के सैकड़ों खण्ड हो जायेंगे । अब तू तीनों लोकों में जहाँ कहीं भी रहना चाहे वहाँ रह । तुझे कोई रोक नहीं सकता ।'

सिन्दूर ने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पिता के चरणों में प्रणाम किया और फिर कोमल वाणी से बोला–'अखिल ब्रह्माण्डेश्वर ! आप सत्व, रज और तम तीनों गुणों के साधन द्वारा संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करते हैं । जबकि आपके साथ ही समस्त विश्व तमसावृत होकर सो जाता है । करोड़ों कल्पों तक घोर तपस्या करने पर भी आपके दर्शन सम्भव नहीं होते । किन्तु मुझे वे सहज ही प्राप्त हैं । अब इससे बढ़कर और सौभाग्य की कौन-सी बात होगी ?'

यह कहकर सिन्दूर ने चतुरानन प्रभु की परिक्रमा की और चरणों में प्रणाम कर तथा उनकी आज्ञा लेकर पृथ्वी की ओर चल पड़ा । अभी कुछ ही योजन दूर गया होगा कि उसके मन में एक शंका उत्पन्न हो गई–'न जाने कितने जन्मों के पुण्य संचित होने पर कठोर तपश्चर्या करने पर ऐसे वरदान की प्राप्ति हो सकती होगी । किन्तु मुझे तो बिना जप, तप और वेदाध्ययनादि किये सहज में यह दुर्लभ वर प्राप्त हो गए । कहीं ऐसा तो नहीं कि मेरे पिता ब्रह्माजी ने मुझे वैसे ही बहला दिया हो । इसलिए इसकी परीक्षा करनी चाहिए कि यह वरदान सत्य है या नहीं ?'

सिन्दूर का वर की परीक्षा का प्रयत्न करना

उसने पुनः सोचा–'किन्तु, इनकी परीक्षा कैसे हो ? यहाँ कोई भी ऐसा प्राणी दिखाई नहीं देता, जिसे पकड़कर देख लूँ कि उसके सैकड़ों खण्ड होते हैं या नहीं ? अब कहाँ चलूँ ? कहीं कोई भी दिखाई नहीं देता ? तब क्यों न ब्रह्माजी पर ही इसका परीक्षण कर लिया जाये ?' ऐसा निश्चय कर वह पुनः ब्रह्मलोक की ओर लौटा । उसने ब्रह्माजी के पास जाकर घोर गर्जन किया और अपनी भुजाओं को तोलने लगा । पद्मयोनि उसके हाव-भाव देखकर ही मन की बात ताड़ गये, इसलिए भय के कारण दूर जाकर बोले–'कहो पुत्र ! लौट कैसे आए ?'

सिन्दूर ने कहा–'पिताजी ! मैं आपके वर की परीक्षा करना चाहता हूँ । जब मुझे कहीं भी कोई दिखाई न दिया तो यहाँ आना ही उचित प्रतीत हुआ ।'

ब्रह्माजी ने दूर से ही कहा–'पुत्र ! मैंने तेरी सुन्दरता देखकर ही मोहवशात् तुझे वर प्रदान किया था । मुझे तेरी इस कुटिलता और दुष्टता का भान नहीं था कि तू मेरे वरदान का परीक्षण मुझपर ही करेगा । वस्तुतः विषधर को दूध पिलाने पर उसमें विष की वृद्धि ही होगी, इस सिद्धान्त की ओर मेरा ध्यान ही नहीं गया था ।'

सिन्दूर फिर भी न माना, वह ब्रह्माजी की ओर बढ़ने लगा तो वे पीछे हटते हुए बोले–'अरे मूढ़ ! अब तू असुर भाव को प्राप्त होगा और तुझे मारने के लिए गजानन भगवान् अवतार लेंगे ।'

शाप सुनकर अट्टहास करता हुआ सिन्दूर चतुर्मुख की ओर झटका । यह देखकर वे प्राण लेकर भागने लगे । पीछे-पीछे असुर भी दौड़ पड़ा । यद्यपि ब्रह्माजी असुर की अपेक्षा दुर्बल थे तो भी प्राण के मोह से वेगपूर्वक भाग रहे थे । भागते-भागते वे पसीने से लथपथ हो गए, किन्तु असुर ने उनका पीछा न छोड़ा ।

चतुरानन का भागकर बैकुण्ठ जाना

चतुरानन बैकुण्ठ धाम तक पहुँच गये थे । वहाँ कुछ श्रम हल्का करने के लिए रुके ही थे कि असुर आता दिखाई दिया । वे वेग से दौड़कर भगवान् विष्णु के पास जा पहुँचे । रमानाथ ने उनका उद्वेग देखकर तुरन्त अपने पास बैठाया और पूछने लगे–'विधाता ! आप इतने डरे हुए क्यों हैं ? आपकी देह भी स्वेद से भीग रही है । लगता है, वेग से भागकर आये हो ।'

ब्रह्माजी बोले–'प्रभो ! मुझे निद्रा आ गई थी, तभी पार्वतीपति पधारे । मैं निद्रा से उठा तो जँभाई आ गई और मेरे मुख से लाल वर्ण का एक सुन्दर महाकाय बालक उत्पन्न हो गया । उसने मुझसे नाम रखने और रहने का स्थान बताने की प्रार्थना की तो मैंने उसका नाम सिन्दूर रखा और रहने के लिए तीनों लोकों में इच्छित स्थान पर रहने को कह दिया । किन्तु उसके सौन्दर्य एवं पुत्र-स्नेह से भ्रमित होकर मैंने उसे यह वर दे दिया कि तू त्रैलोक्य विजयी होगा और तू जिसे भी पकड़कर जकड़ लेगा वह वहीं चूर-चूर हो जायेगा । अब वह दुरात्मा उस वरदान का परीक्षण मुझपर ही करने पर उतारू है । हे दयासिन्धो ! उस दुष्ट से मेरी रक्षा कीजिए ।'

विष्णु बोले–'वाह ! आपने भी कैसा सुन्दर वर दे दिया उसे बिना विचार किए हुए वर प्रदान का यही दुष्परिणाम हो सकता था । आपका पुत्र-मोह आपको ही नहीं, तीनों लोकों को यातना-ग्रस्त कर देगा !'

दोनों में इस प्रकार वार्तालाप चल ही रहा था कि दौड़ता हुआ सिन्दूर भी वहीं आ गया और ब्रह्माजी पर झपटता हुआ बोला–'क्यों, यहाँ आकर छिप रहे हो ? परन्तु मैं तुम्हें कहीं भी छोड़ने वाला नहीं हूँ । आओ, चुपचाप मेरी पकड़ में आना स्वीकार कर लो ।'

'बचाओ प्रभो ! बचाओ' कहते हुए ब्रह्माजी भगवान् विष्णु के पीछे की ओर होने लगे, तभी भगवान् ने उसे समझाया–'पुत्र ! तू अत्यन्त

बलवान् और चतुरानन अल्पबल हैं, इसलिए इनसे युद्ध करने में तुम्हें सुयश नहीं मिलेगा । वरन् इनका अनिष्ट होने पर तुम्हें अपकीर्ति ही प्राप्त होगी । इसलिए इन्हें छोड़कर किसी अन्य से युद्ध करो ।'

सिन्दूर बोला–'मुझे तो अपने वरदान का परीक्षण करना है, यह हों या कोई वीर । यदि यह नहीं लड़ते तो तुम्हीं आकर युद्ध करो ।'

यह कहकर वह विष्णु की ओर बढ़ा, किन्तु वे तो परम नीति-निपुण थे । उसे भ्रमित करते हुए बोले–'पुत्र ! मैं तो केवल सत्वगुण सम्पन्न हूँ, इसलिए लोकपालन में ही लगा रहा ।'

विष्णु का सिन्दूर दैत्य को कैलास भेजना

विष्णुजी ने मुस्कराते हुए कहा–'कैलास पर्वत पर शिवजी निवास करते हैं । उन्होंने अपने दृष्टिपात मात्र से कामदेव को भस्म कर दिया था । बहुत से असुर उनके हाथ से मारे गये हैं । वे उमानाथ सुदृढ़काय और सदैव युद्ध के लिए उत्सुक रहने वाले भी हैं । उनसे युद्ध करो तो तुम्हें सन्तोष भी होगा और सुयश की भी प्राप्ति होगी ।' रमानाथ के नीतिपूर्ण मधुर वचन सुनकर असुर को बड़ी प्रसन्नता हुई । उसने सोचा–'ऐसे ही युद्धप्रिय वीर से युद्ध करने में आनन्द आ सकता है, अतः वही करना चाहिए ।'

और, वह वेगपूर्वक चलता हुआ कैलास-शिखर पर जा पहुँचा । उस समय भगवान् शंकर समाधि में लीन हुए बैठे थे । पार्वती जी उनकी सेवा में रत थीं तथा नन्दी और भृंगी आदि भी उनके निकट ही बैठे हुए थे ।

सिन्दूरासुर द्वारा पार्वती को हरण करने की चेष्टा

सिन्दूर ने देखा कि एक बाघाम्बरधारी योगी तपस्या कर रहा है ।

उसके समस्त शरीर पर भस्म रमी हुई है। कन्धे पर विशाल गजचर्म और ललाट पर अर्द्धचन्द्र सुशोभित है। इस प्रकार का वेष देखकर उसने विचार किया कि विष्णु ने अवश्य ही मेरे साथ छल किया है, अन्यथा कहाँ यह वनवासी तपस्वी और कहाँ मैं अत्यन्त शूर-वीर विशालकाय योद्धा। इस दुर्बल के साथ कैसा युद्ध? इस प्रकार का छल करने के कारण विष्णु को ही दण्ड देना चाहिए।'

यह विचार कर वह लौटने को ही था, तभी उसकी दृष्टि जगज्जननी पार्वती जी पर पड़ी। उनके अलौकिक रूप को वह देखता ही रह गया। फिर उसने सोचा—खाली हाथ भी क्यों लौटूँ, इस सुन्दरी को ही क्यों न उठा ले चलूँ?

ऐसा विचार कर वह जगज्जननी की ओर बढ़ा। तभी उसका मन्तव्य समझकर पार्वती जी भय के कारण काँपने लगीं और फिर मूर्च्छित हो गईं। असुर ने उनकी चोटी पकड़ी और बलपूर्वक उठाकर ले जाने लगा।

नन्दी और भृंगी आदि ने देखा तो असुर को मारने के लिए बढ़े, किन्तु वे उसका कुछ भी न बिगाड़ सके। सिन्दूर ने उन्हें मार-मारकर भगा दिया। वे किंकर्तव्यविमूढ़ हुए माता पार्वती जी को ले जाते देखते रहे। असुर उन्हें ले जा रहा था, तभी वे होश में आ गईं और विलाप करने लगीं।

नन्दी आदि ने भगवान् शिव को जगाने का प्रयत्न किया। अधिक कोलाहल होने से भी उनकी समाधि टूट चुकी थी। उन्होंने नन्दी से प्रश्न किया कि यह कोलाहल कैसा है? तो उन्होंने असुर द्वारा पार्वतीजी को हरण कर ले जाने की बात बताई।

शिवजी ने पार्वती-हरण होता हुआ सुना तो क्रोधित हो उठे। उन्होंने दशभुजी वेश धारण कर सभी भुजाओं में त्रिशूलादि दिव्यास्त्र धारण किये और वृषभ पर चढ़कर जिधर असुर गया था, उधर वेग से दौड़े।

कुछ ही देर में उन्होंने उसे जा पकड़ा और पुकारते हुए बोले—'अरे

दुष्ट ! मेरी प्रिया को कहाँ लिये जा रहा है ? ठहर जा, अन्यथा दुष्परिणाम भोगना होगा ।' उसने पीछे फिर देखा तो अट्टहास करता हुआ बोला–'अरे मूर्ख तापस ! क्या मच्छर के समान भिनभिनाता है ? मेरे श्वास-प्रश्वास से ही सुमेरु प्रभृति पहाड़ पर्वत काँपते हैं तो तू क्या वस्तु है ? जा, यदि प्राण-रक्षा चाहता है तो तुरन्त यहाँ से चला जा और किसी अन्य स्त्री से विवाह कर ले । क्योंकि अब यह स्त्री तो तुझे मिलेगी नहीं । अथवा कुछ बूता हो तो सामने आकर युद्ध कर ।'

शिवजी भी क्रोधपूर्वक उसकी ओर बढ़े, बोले–'मुझ महाकाल से लड़ना चाहता है तो लड़ ले । तब तुझे शीघ्र ही ज्ञात हो जायेगा कि दुष्कर्म का क्या फल होता है ?'

❀❀❀

२. द्वितीय अध्याय

मयूरेश्वर का प्रकट होना

द्वन्द्व-युद्ध आरम्भ हुआ । किन्तु माता पार्वती ने असुर की प्रबलता समझ ली थी, इसलिए उन्होंने मयूरेश का स्मरण किया, इस कारण एक अत्यन्त तेजस्वी ब्राह्मण के रूप में वे प्रकट हो गए और अपने परशु के स्पर्श से महासुर को पीछे हटाते हुए बोले–'असुरराज ! माता पार्वती जी को मेरे पास छोड़कर शिवजी से युद्ध करो । फिर जो जीतेगा, वही माता पार्वती को पा लेगा ।'

असुर ने उनकी बात मान ली और जगज्जननी को उनके पास छोड़कर शिवजी से युद्ध करने लगा । वह जब-जब शिवजी को अपने भुज-पाश में लेने का प्रयत्न करता, तब-तब मयूरेश अदृश्य रूप से अपने

परशु का उसके वक्षःस्थल पर परशु प्रहार कर देते । इसलिए उस समय अत्यन्त व्याकुल हो उठता और उन्हें भुजपाश में न पाता था ।

इस प्रकार बहुत बार के परशु प्रहार ने असुर की शक्ति का अत्यन्त क्षय कर दिया, जिससे वह शिथिल होता गया । तभी भगवान् शंकर ने उसके वक्षःस्थल पर त्रिशूल का तीव्र प्रहार कर दिया, जिसे वह सहन न करके धरती पर गिर पड़ा । मयूरेश ने उसकी पराजय घोषित करते हुए कहा—'असुरेश्वर ! तुम युद्ध में शिवजी को नहीं हरा सके, इसलिए माता पार्वतीजी को प्राप्त करने के लिए वही अधिकारी हैं । तुम तुरन्त उन्हें छोड़कर यहाँ से भाग जाओ, अन्यथा महाकाल शिव तुम्हारा वध कर डालेंगे ।'

सिन्दूर ने भी अपनी पराजय स्वीकार कर ली । इस समय उसमें अधिक युद्ध करने की शक्ति नहीं थी । अतः पार्वती जी को वहीं छोड़कर वह तुरन्त पृथ्वीलोक के लिए चल पड़ा ।

तब पार्वती ने चैन की साँस लीं और ब्राह्मण वेशधारी मयूरेश के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हुई बोलीं—'विप्रवर ! असुर के हाथ से मेरी रक्षा आपकी ही कृपा से हुई है । मैं आपकी इस कृपा के प्रतिदान में समर्थ नहीं हूँ । किन्तु आप मुझे अपना परिचय देने का कष्ट करें ।'

विप्रवेशधारी मयूरेश ने कहा—'माता ! मैंने क्या किया है ? असुर की पराजय तो भगवान् शंकर के द्वारा हुई है । मैंने धर्म-संगत निर्णय मात्र ही दिया है ।'

'जो कुछ भी हो' पार्वती ने कहा—'बिना आपकी कृपा के छुटकारे की कोई सम्भावना नहीं दिखती थी । इसलिए इस समय तो आप मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय प्रतीत होते हैं । आप कौन हैं ? यह बताने की कृपा कीजिए ।'

पार्वती जी की प्रार्थना पर भगवान् मयूरेश ने अपना रूप प्रकट

किया। वही रूप-लावण्य, वही गतिविधि, वही शृंगार, वैसे ही दिव्याभरण जो त्रेता में उत्पन्न हुए पुत्र गणेश मयूरेश के थे। पार्वती उनकी मन्द मुस्कान पर न्यौछावर हो गईं। बोलीं—'गणेश्वर ! देवाधिदेव ! आपने आकर मेरी रक्षा की।'

मयूरेश ने कहा—'माता ! आश्चर्य न करो। मैं पुत्र रूप में सदैव आपके पास हूँ। त्रेतायुग में स्वधाम गमन के समय आप ने पुनः दर्शन की इच्छा प्रकट की और मैंने द्वापर में दर्शन देना स्वीकार कर लिया था। अतएव मैं इसी सिन्दूरासुर को मारने के लिए आपके पुत्र रूप में पुनः अवतार लूँगा। उस समय 'गजानन' नाम से मेरी प्रसिद्धि होगी।'

यह कहकर मयूरेश वहीं अन्तर्धान हो गये। माता पार्वती उनका वियोग दुःख न सहने के कारण मूर्च्छित होने लगीं तो शिवजी ने उन्हें सँभालते हुए कहा—'प्रिये ! सावधान हो। मयूरेश सदैव तुम्हारे साथ हैं, अपने हृदय में उनका दर्शन करो। उनका कथन कभी मिथ्या नहीं हो सकता।'

शिवजी के वचनों से पार्वती जी को शान्ति हुई और वे उनकी आज्ञा से वृषभारूढ़ होकर उनके साथ कैलास के लिए चल दीं। वह मार्ग पार करने में उन्हें अधिक विलम्ब न लगा। अब समाचार ज्ञात होने पर शिवगण मयूरेश्वर का आभार मानने और उनकी जय बोलने लगे।

सिन्दूरासुर द्वारा दिग्विजय

कैलास से चलकर वह असुर पृथ्वी-लोक में गर्जन करता हुआ घूमने लगा। उसके गर्जन से पृथ्वी कम्पायमान होती, पर्वत-शिखर और वृक्ष धराशायी होते तथा भयभीत पक्षी और पशु इधर-उधर भागते फिरते थे।

आसुरी प्रकृति के मनुष्यों ने भी सिन्दूर को अत्यन्त बलवान् जानकर उनका अनुगामी होना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार से मनुष्यों का

जमघट बढ़ने लगा । वे उसका आदर करते और आज्ञा पालन में तत्पर रहते थे ।

धीरे-धीरे उसके अनुयायियों, साथियों, मित्रों की संख्या बढ़ती गई । अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र एकत्र होने लगे, हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेनाएँ एकत्र होने लगीं । इस प्रकार उसकी शक्ति दिनों-दिन बढ़ती जा रही थी ।

अब उसने दिग्विजय का निश्चय किया । आक्रमणों की शृंखला चल पड़ी । जिस राज्य पर चढ़ाई की वही अधीन हो गया । अनेक राजे मारे गए, अनेक बन्दी हुए, अनेकों ने धनांश मणि-रत्न, वस्त्रादि भेंट देकर सन्धि कर ली । अनेक नरपति राज्य छोड़कर वनवासी तपस्वी हो गए ।

इस प्रकार वह जिधर निकल जाता, उधर ही रक्त की नदियाँ बहा देता । भीषण नरसंहार की उसकी प्रवृत्ति बन गई । उसका सामना करने की शक्ति किसी नरेश में नहीं रही । अन्त में तो यह स्थिति हुई कि वह जिस राजा से जो कुछ माँगता वही उसे बिना विलम्ब, बिना विरोध प्राप्त हो जाता । जब कोई राजा विरोधी न रहा तो उसने ऋषि-मुनियों की ओर कुदृष्टि की । न जाने कितने तपस्वी मार डाले और कितने कारागारों में डाल दिये । जो चुपचाप गिरि-गुफाओं में जा छिपे वे ही अपनी जीवन-रक्षा में सफल रहे ।

अब मठ और मन्दिर की बारी थी । सभी को छति पहुँचाई गई । सभी नष्ट कर दिए गए । प्रतिमाएँ खण्डित कर दी गईं । वैदिक क्रिया-कलाप अपराध घोषित हुई । स्वाहा, स्वधा, वषट्कार के स्वरों का लोप हो गया । सर्वत्र हाहाकार सुनाई देने लगा ।

पृथ्वी विजय के पश्चात् स्वर्गलोक पर चढ़ाई की गई । ब्रह्माजी प्रदत्त वरदान की बात सभी को विदित हो गई थी, इसलिए देवगण बहुत कुछ सावधान हो चुके थे । बहुत से देवता पहिले ही गिरि-कन्दराओं में

जा छिपे थे। असुर ने अमरावती पर आक्रमण किया तो देवराज ने पर्याप्त प्रतिरोध के पश्चात् हथियार डाल दिये और स्वर्ग छोड़कर अन्यत्र चले गए।

देवताओं द्वारा विनायक की स्तुति करना

अवसर प्राप्त होने पर देवताओं ने गुप्त गोष्ठी की, जिसमें सिन्दूरासुर को परास्त करने सम्बन्धी विचार ही चला। बहुत सोच-विचार के पश्चात् ही यह समझ में न आ रहा था कि असुर को किस प्रकार हराया जाये। अन्त में देवगुरु बृहस्पति ने उपाय सुझाया—'भगवान् मयूरेश का स्मरण करो, वे ही इस संकट को दूर करने में समर्थ हैं।'

देवताओं ने पूछा—'वे भगवान् कहाँ मिलेंगे ? यह हमें ज्ञात नहीं है। बताइये, उनसे प्रार्थना करने कहाँ चला जाये ?'

देवगुरु बोले—'अरे ! वे प्रभु तो सर्वत्र विद्यमान हैं। यहीं रहते हुए भक्तिभावपूर्वक उन्हीं विनायक भगवान् की स्तुति करो वे अवश्य ही प्रसन्न होकर अवतार लेंगे और समस्त संसार को भय मुक्त करने के लिए असुरराज को समाप्त कर डालेंगे। तुमको भी अपने धाम की प्राप्ति हो जायेगी।'

बृहस्पति से प्रेरणा प्राप्त कर समस्त देवगण एकत्र होकर शान्त, विकार-रहित, भय-रहित एवं भक्तिभाव सहित बैठ गए। और भगवान् विनायक देव की स्तुति करने लगे—

"जगतः कारणं योऽसौ रविनक्षत्रसम्भवः ।
सिद्धसाध्यगणाः सर्वे यत एव च सिन्धवः ॥
गन्धर्वाः किन्नरा यक्षाः मनुष्योरगराक्षसाः ।
यतश्चराचरं विश्वं तं नमामि विनायकम् ॥"

'जो विनायकदेव संसार के कारण, सूर्य और नक्षत्रों को भी उत्पन्न

करने वाले, सभी सिद्धगण, साध्यगण, समुद्र, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, मनुष्य, नाग, राक्षस आदि को प्रकट करने वाले तथा जिनसे इस चराचर रूप सम्पूर्ण विश्व का प्रादुर्भाव हुआ है, उन्हें हम नमस्कार करते हैं ।

हे प्रभो ! आप जैसे अधीश्वर के सदैव जाग्रत् रहते हुए भी एक तुच्छ असुर ने समस्त विश्व को संकट में डाल रखा है । इस स्थिति से हमें केवल आपका ही भरोसा है । क्योंकि–

"अन्यं कं शरणं यामः को नु पास्यति नोऽखिलान् ।
जह्येनं दुष्टबुद्धिं त्वमवतीर्य शिवालये ॥"

'हे नाथ ! अब हम किसकी शरण में जायें ? हमारी रक्षा अन्य कौन कर सकता है ? प्रभो ! अब आप स्वयं ही भगवान् शंकर के गृह में अवतरित होकर असुर को समाप्त कीजिए ।'

इस प्रकार स्तुति करने के पश्चात् समस्त देवगण, ऋषि-मुनि आदि घोर तपश्चर्या में लगे । कुछ ने पूर्ण निराहार रहते हुए, कुछ ने संयमित भोजन करते हुए तथा कुछ ने निरन्तर जल में खड़े रहकर भगवान् विनायक का ध्यान और नाम जप किया ।

देवादि के कठोर तप से सन्तुष्ट हुए देवाधिदेव गणेश्वर उनके समक्ष प्रकट हो गये । वे कोटि आदित्यों के समान तेजोमय और दिव्य वस्त्रालंकार धारण किए हुए थे । देवता आदि ने उनके दर्शन कर हाथ जोड़े और चरणों में साष्टांग दण्डवत् की तथा खड़े होकर उनकी स्तुति करने लगे–'प्रभो ! हम आज धन्य हो गए । आपके अलभ्य दर्शन का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है । नाथ ! सिन्दूर नामक भयंकर राक्षस बड़े उपद्रव कर रहा है, अतः उसके वध का उपाय कीजिए ।'

भक्त की अभिलाषाओं की पूर्ति में कल्पतरु के समान भगवान् गणेशजी ने गम्भीर वाणी में कहा–

"हनिष्ये सिन्दूरं देवा मा चिन्ता कर्तुमर्हथ ।
दुःखप्रशमनं नाम स्तोत्रं वः ख्यातिमेष्यति ॥"

'हे देवगण ! मैं सिन्दूर नामक उस असुर को अवश्य मार दूँगा । तुम चिन्ता न करो । तुम्हारे द्वारा किया गया यह स्तोत्र 'दुःखप्रशमन' के नाम से विख्यात होगा ।'

'इस स्तोत्र का माहात्म्य सुनो—इसका दिन में एक बार, दो बार या तीन बार पाठ करने वाले के तीनों प्रकार के ताप नष्ट होंगे । मैं भगवान् शंकर के गृह में 'गजानन' नाम से अवतरित होऊँगा ।'

भगवान् गणेश्वर देवताओं को इस प्रकार का वर देकर अन्तर्धान हो गए । देवता एवं ऋषि-मुनि आदि ने अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव करते हुए उनका जयघोष किया और फिर सभी अपने-अपने स्थानों को प्रस्थित हुए । वे मार्ग में भगवान् के अद्वितीय स्वरूप का चिन्तन करते हुए अत्यन्त हर्षित हो रहे थे ।

❁❁❁

३. तृतीय अध्याय

भगवान् गजानन का प्रकट होना

कुछ काल व्यतीत होने पर माता पार्वती जी गर्भवती हुईं । उन दिनों उनका मुखमण्डल अत्यन्त तेजोमय दिखाई देता था । एक दिन शरीर में कुछ उष्णता का अनुभव करती हुई गिरिनन्दिनी ने शिवजी से निवेदन किया—'नाथ ! यहाँ कुछ गर्मी प्रतीत होती है इसलिए मुझे किसी ठण्डे स्थान पर ले चलने की कृपा करें । शिवजी ने उनका निवेदन मान लिया और उन्हें वृषभ पर चढ़ाकर ले चले । साथ ही सखियों और शिवगणों

का समुदाय चल रहा था । देवताओं ने शिवजी को इस प्रकार यात्रा करते देखा तो वे अनेक प्रकार के मधुर मंगलमय बाजे बजाने लगे ।

चलते-चलते वे पर्यन्ती के सुन्दर वन में पहुँचकर रुके । वहाँ अनेकों प्रकार के सुन्दर सुगन्धित पुष्प खिले थे । फलदार वृक्षों पर मीठे फल थे तथा उनकी सघनता से वातावरण अत्यन्त सुहावना और सुखद शीतल हो रहा था । गिरिजा को वह स्थान बहुत रुचिकर प्रतीत हुआ और उनके कहने पर भगवान् शिव ने वहीं ठहरना स्वीकार कर लिया ।

शिवजी की आज्ञा पाकर उनके गणों ने वहाँ एक सुन्दर दिव्य एवं भव्य मण्डप का निर्माण किया । वहाँ सब प्रकार की सुख-सुविधाएँ जुटाई गईं । जब सब व्यवस्था हो गई तब शिवजी ने पार्वती जी से कहा—'प्रियतमे ! तुम्हारे लिए सभी आवश्यक सुख-साधन एकत्र किये जा चुके हैं । अन्य किसी वस्तु की आवश्यकता पड़े तो यह गण उपस्थित कर देंगे । इसलिए तुम जब तक चाहो वहाँ रहो । इन गणों और सखियों को छोड़े जा रहा हूँ ।'

पार्वतीजी ने स्वीकारोक्ति की तो शिवजी एक करोड़ गणों को वहाँ छोड़कर कैलास-शिखर पर जा पहुँचे और वहाँ ध्यानयोग का आश्रय ले समाधि में लीन हो गए ।

जगज्जननी उस अरण्य में सखियों के साथ रहतीं और कभी जल से परिपूर्ण सरोवर में क्रीड़ा करतीं तो कभी वृक्षावलियों के नीचे बैठी रहकर सुगन्धित शीतल वायु का सेवन करतीं । उनकी रक्षा में एक करोड़ शिवगण सदैव प्रस्तुत रहते ही थे, इसलिए किसी प्रकार का भय भी नहीं था ।

धीरे-धीरे नौ मास पूर्ण हो गए । वातावरण अत्यन्त शान्त, सुखदायक और उल्लासवर्द्धक था । शीतल-मन्द समीर प्रवाहित हो रही थी । आकाश नितान्त स्वच्छ हो गया था । ऐसे समय में गिरिनन्दिनी के समक्ष

चन्द्रमा के समान परम हर्षोत्पादक परम तत्व प्रकट हो गया । वे स्वयं साक्षात् भगवान् गणेश ही थे ।

अत्यन्त तेजस्वी और सुन्दर मुखारविन्द, प्रफुल्लित पद्म के समान विशाल नेत्र, दिव्य किरीट युक्त मस्तक, प्रवाल की आभा का तिरस्कार करने वाले अरुण अधरोष्ठ, कानों में सुन्दर कुण्डल, चार भुजाओं में परशु, माला, मोदक और कमल, कण्ठ में मुक्तामाल और कटि में करधनी थी । चरणों में ध्वज, अंकुश और कमल के चिह्न बने थे ।

उस भुजापुञ्जमय चतुर्भुज रूप को देखकर पार्वती जी आवेग के कारण काँपने लगीं । फिर कुछ संयत होकर उन्होंने पूछा–'आप कौन हैं ? अपना परिचय देने की कृपा करें ।'

तेजोमय तत्व ने कहा, 'माता ! मैं वही हूँ जिसके पुनः दर्शन की आपने कामना की थी और मैंने द्वापर में प्रकट होने का वचन दिया था । जगत् के सर्ग, पालन और लय का कर्ता एवं समस्त ब्राह्मण का अधीश्वर गणेश मैं ही हूँ । गणेश, गणेश्वर, जगत्पति, मयूरेश, विनायक, गजानन आदि मेरे ही नाम हैं । मैंने ही तेजस्वी ब्राह्मण के रूप में सिन्दूरासुर से आपको बचाया था । मैंने त्रेतायुग में असुरराज उग्रेक्षण का वध किया था । अब इस द्वापर में भी पुनः आपके पुत्र रूप से प्रकट हुआ हूँ । इस अवतार से मैं सिन्दूर को मारकर तीनों लोकों का भय दूर करूँगा, अब मेरा नाम 'गजानन' होगा ।'

देवाधिपति विनायक मयूरेश की पहिचान कर गिरिजा आश्वस्त एवं प्रसन्न हुईं तथा उनको प्रणाम कर हाथ जोड़े भक्तिभाव से स्तवन करने लगीं–

"भक्तप्रियं निराकारं साकारं गुणभेदतः ।
नमाम्यहमतिस्थूलमणुभ्योऽणुतरं विभुम् ॥"

'जो भक्तप्रिय, निराकार किन्तु गुणभेद से साकार हो जाते हैं, उन

अतिस्थूल, अणुओं से भी अत्यन्त सूक्ष्म और व्यापक परमात्मा गणेश्वर को मैं नमस्कार करती हूँ।'

'हे नाथ ! आप अव्यक्त होते हुए भी भक्तों पर कृपा करने के लिए ही व्यक्त होते हैं। आप ही सत्त्व, रज और तम तीनों के आधार हैं। आप ही माया के आश्रय-स्थान, सब मायाओं के जानने वाले, सर्वसमर्थ तथा सभी के अन्तर में निवास करने वाले परात्पर ब्रह्म हैं। मेरा परम सौभाग्य ही है कि आप मेरे पुत्र रूप में प्रकट हुए हैं। किन्तु, प्रभो ! ऐसी कृपा अवश्य कीजिए कि अब कभी मेरा आपसे वियोग न हो।

अपने पुत्र से पार्वती का भयभीत होना

माता के द्वारा की हुई स्तुति सुनकर भगवान् ने अपना वह रूप छिपा लिया और चतुर्भुज शिशु रूप हो गए। नाक के स्थान पर शुण्डदण्ड, मस्तक पर चन्द्रमा और हृदय पर चिन्तामणि प्रकाशित थी। दिव्य वस्त्राभूषण धारण किये हुए भगवान् गजानन के उस अद्भुत रूप को माता गिरिजा ध्यानपूर्वक देखने लगीं।

किन्तु उनके भयंकर रूप को देखकर माता अधीर हो उठीं। रक्तवर्ण, ऊबड़-खाबड़ मस्तक, हाथी की सूँड़ के समान नाक, सूप जैसे कान, छोटे-छोटे नेत्र, विशाल एवं उन्नत पेट तथा छोटे-छोटे हाथ-पाँव ! उन्होंने सोचा—ऐसे भयंकर रूप वाला बालक तो मैंने कहीं नहीं देखा। जब देवगण, ऋषिगण एवं उनकी पत्नियाँ इसे देखेंगी तब मैं किस मुख से बताऊँगी कि यह मेरा पुत्र है ? यदि कम सुन्दर होता तो भी कोई बात न थी, इसका तो प्रत्येक अवयव बेडौल है !

इस प्रकार पुत्र की कुरूपता का विचार करते-करते माता के नेत्र सजल हो उठे। तभी भगवान् शंकर वहाँ पधारे। वे सर्वज्ञ अपनी प्राण-प्रिया के मन की उद्विग्नता को समझ गये और तब पुत्र को ध्यानपूर्वक

देखते हुए बोले–'प्रिये ! पुत्र के रूप की भयंकरता देखकर रोती हो । परन्तु बाह्य रूप के देखने मात्र से किसी के व्यक्तित्व का अनुमान नहीं किया जा सकता । इसका रक्तवर्ण, गज जैसा मुख, विशाल उदर, चार भुजाएँ किन्तु छोटी-छोटी आँखें, पाँव भी बहुत छोटे, इस सबसे शिशु का असाधारण होना स्पष्ट है । देवि ! इसके गुणों पर विचार करो । यह अखिल विश्व का अधिपति, देवाधिदेव, सभी की आत्मा और मंगलों के मूल से सम्पन्न है । यह त्रिलोकों की रक्षा के लिए सतयुग में दशभुज विनायक के रूप मे प्रकट हुआ था ।' त्रेतायुग में शुक्ल वर्ण, दशभुज मयूरेश के रूप में तुम्हारे पुत्र रूप से यही अवतरित हुआ था । अब द्वापर में यह वही सिन्दूरासुर को नष्ट करने के लिए तुम्हारे पुत्र विनायक रूप में अवतरित हुआ है । आगे भी कलियुग में यह अत्याचार, अनाचार को नष्ट करने के लिए 'धूम्रकेतु' नाम से अवतार लेगा ।'

तभी शिशु रूप भगवान् बोल उठे–'चन्द्रमौले ! आप मुझे भली प्रकार समझ गए हैं । वस्तुतः मैं सिन्दूरासुर को मारकर पृथ्वी का बोझ उतारने के लिए आपके पुत्र रूप में अवतस्ति हुआ हूँ । मैं समस्त विश्व को सन्तुष्ट करूँगा । समस्त वैदिक कर्मों का प्रारम्भ हो जायेगा तथा मैं सभी भक्तों की अभिलाषाएँ पूर्ण करता हुआ राजा वरेण्य को ज्ञान और वरदान प्रदान करूँगा । वह राजा मेरा परम भक्त है । देव-ब्राह्मण एवं अतिथि पूजक, पञ्चयज्ञोपासक, पुराण श्रवण में मति वाला है । उसकी सुन्दर साध्वी, पतिप्राणा पत्नी का नाम पुष्पिका है । राजा-रानी दम्पति ने बारह वर्ष तक तपस्या करके मुझे पुत्र रूप में प्राप्त करने का मुझसे वर प्राप्त किया था । जिसके फलस्वरूप उसने अभी पुत्र प्रसव किया है, जिसे राक्षसी उठा ले गई है । इस कारण रानी पुष्पिका मूर्च्छित पड़ी है, और पुत्र के कारण प्राण त्याग देगी, इसलिए आप मुझे अभी उस प्रसूता रानी के पास पहुँचा दीजिए ।'

राजा वरेण्य के यहाँ गजानन को नन्दी द्वारा पहुँचाना

यह सुनकर भगवान् शंकर ने गजानन भगवान् का विविध उपचारों से पूजन किया और फिर नन्दी को आज्ञा दी–

'वत्स ! तुम्हें एक कार्य बहुत ही सावधानी से सम्पन्न करना है । माहिष्मती नगरी में वरेण्य नामक धर्मात्मा राजा राज्य करते हैं । उसकी साध्वी रानी पुष्पिका ने अभी एक पुत्र प्रसव किया था, जिसे कोई राक्षसी उठा ले गई । वह रानी अभी मूर्च्छित पड़ी है । तुम तुरन्त ही पार्वती के इस नवजात शिशु को वहाँ ले जाओ और मूर्च्छित रानी के पास लिटाकर लौट आओ । यह कार्य रानी की मूर्च्छा दूर होने से पहिले ही पूर्ण हो जाना चाहिए । अन्यथा प्रसूता के प्राण जाने की सम्भावना है ।'

नन्दी ने भगवान् शंकर के चरणों में प्रणाम कर शिशु रूप गजानन भगवान् को लेकर माहिष्मती नगर की ओर वायुवेग से चल पड़े । मार्ग में अनेक बाधाएँ आईं, किन्तु नन्दीश्वर ने भगवान् शंकर का स्मरण करते हुए अपने पराक्रम से उन बाधाओं को दूर किया ।

माहिष्मती राजभवन के प्रसूतागार में रानी पुष्पिका अभी भी मूर्च्छित पड़ी थी । नन्दी ने वहाँ पहुँचकर गजानन को उनके समीप लिटा दिया और चुपचाप वहाँ से निकल आये । फिर वायुवेग से चलते शीघ्र ही लौटकर आशुतोष भगवान् की सेवा में उपस्थित हुए और शिव-शिवा के चरणों में प्रणाम कर शिशु को वहाँ सकुशल पहुँचा देने का समाचार दिया ।

उधर पुष्पिका की मूर्च्छा दूर हुई तो उसने रक्तवर्ण, गजमुख, लम्बोदर एवं अद्भुत वस्त्राभूषणों से अलंकृत बालक को अपने निकट देखा । उससे वह अत्यन्त भयभीत हुई और रोती हुई प्रसूतिगृह से बाहर निकली ।

उधर शिशु का रुदन सुनकर परिचारिकाएँ दौड़ी हुई भीतर गईं तो उनके विकराल रूप को देखकर वे भी भय से काँप गईं। फिर जो-जो भी स्त्री या पुरुष प्रसूतिकागृह में गया, वही भयभीत एवं काँपता हुआ बाहर निकल आया। शिशु के भयानक रूप को देखकर कुछ तो मूर्च्छित ही हो गए।

सिन्दूरासुर के अत्याचारों की वृद्धि

महाराज वरेण्य को सूचना दी गई। उन्होंने सुना कि अत्यन्त भयानक आकार का एवं लाल वर्ण वाला पुत्र हुआ है तो राजा भी चिन्तित हो उठे। तभी कुछ विचारवान् लोगों ने कहा–'राजन्! शिशु जो हमने देखा है, वह ऐसा अद्भुत आकार का और महाभयंकर है कि ऐसा शिशु न कभी उत्पन्न हुआ, न भविष्य में कभी होगा ही। यह लक्षण वंश को नष्ट करने वाले हैं, इसलिए ऐसे कुलनाशक बालक को घर में रखना उचित नहीं। प्रजा की भी इसी में भलाई है।'

विद्वान् कहलाने वाले लोगों की उक्त बात सुनकर राजा ने अपना दूत बुलाया और उसे आदेश दिया–'राजवंश और प्रजा के लिए अहितकर ऐसे शिशु को निर्जन वन में ले जाकर छोड़ आओ और लौटकर मुझे सूचित करो।'

दूत 'जो आज्ञा!' कहकर प्रसूतिकागार में गया और शिशु को शीघ्रतापूर्वक उठाकर निर्जन वन में ले गया। वहाँ एक निर्मल जल से भरा हुआ सरोवर विद्यमान था। उस स्थान पर कोई मनुष्य नहीं पहुँच सकता था। हिंसक पशु ही जल पीने के लिए वहाँ आते और वृक्षों की छाँह में विश्राम करते रहते। दूत ने शिशु को उस सरोवर के तट पर रखा और शीघ्रता से लौटकर राजा की सेवा में उपस्थित हुआ।

उसने राजा को प्रणाम कर कहा–'महाराज! मैंने आपकी आज्ञानुसार

उस भयंकर शिशु को हिंसक जीवों से युक्त अरण्य में सरोवर तट पर रख दिया, जहाँ वह व्याघ्रादि हिंस्र जन्तुओं का आहार बन जायेगा ।'

राजा वरेण्य ने खिन्न हृदय से दूत का कथन सुना और चुप बैठ गए। उनके मन में निर्दोष अबोध शिशु के परित्याग की पीड़ा कसक रही थी, किन्तु जनमत को स्वीकार करना कर्त्तव्य समझकर वे मौन थे ।

❁❁❁

४. चतुर्थ अध्याय

महर्षि पराशर की प्रभु-भक्ति

उस निविड़ वन में, जहाँ मनुष्य पहुँचता ही नहीं था केवल हिंस्र जीव ही घूमते रहते या कभी-कभार कोई पहुँचे हुए ऋषि-मुनि, सिद्ध-महात्मा ही उधर निकल जाते थे । वहाँ एक शिशु को हाथ-पाँव फेंकता हुआ देखकर एक शृगाल (सियार) बड़ा प्रसन्न होता हुआ उधर लपका ।

उसी समय उस मार्ग होकर परम तपस्वी महर्षि पराशर निकले और उनकी दृष्टि भी उस शिशु पर पड़ी । वे सोचने लगे कि 'अवश्य ही इन्द्र ने मेरा तप भंग करने के लिए कोई माया रच डाली है । हे दीनबन्धो ! हे जगदीश्वर! मैंने कभी कोई पाप नहीं किया है, अतः आप ही मुझ निष्पाप की रक्षा कीजिए ।'

यह सोचते और प्रार्थना करते हुए महर्षि पराशर बालक की ओर वेग से बढ़े । शृगाल ने तेजस्वी महर्षि को उधर बढ़ते देखा तो तुरन्त रुका और वन में एक ओर खिसक गया । महर्षि ने निकट जाकर शिशु को ध्यान से देखा—रक्तवर्ण, चार भुजाएँ, गजवदन, सूर्य के समान अद्भुत तेज तथा दिव्य वस्त्राभूषणों से अलंकृत !

उन्होंने उसके छोटे-छोटे अरुण चरणों को देखा तो उनपर ध्वज, अंकुश और कमल की रेखाएँ स्पष्ट प्रतीत हुईं। उस अलौकिक शिशु को देखकर महर्षि के शरीर में रोमाञ्च हो आया। वे हर्षातिरेक से शिशु को अपलक निहारने लगे। उनके नेत्रों में स्नेह नीर उमड़ पड़ा और वे गद्गद वाणी से बोल उठे—'हे प्रभो ! हे जगदीश्वर ! आप यहाँ क्यों विराजमान हैं ? मैं तो आपको देखकर इन्द्र का कोई छल समझ रहा था। किन्तु आप साक्षात् परमात्मा मुझ सत्यवादी परम भक्त के साथ छल क्यों करने लगे ? नाथ ! मेरे मन में उत्पन्न शंका के लिए आप मुझे क्षमा करें।'

महर्षि ने शिशु के चरणों में अपना मस्तक रख दिया और अपने भाग्य की सराहना करते हुए बोले—'आज मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ, जो अनायास ही त्रैलोक्यपति के दर्शन कर रहा हूँ। मेरा जीवन, जन्म, मेरे जन्मदाता माता-पिता और तपश्चर्या सभी कुछ धन्य हैं। अब मैं निश्चय ही जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा पा गया। मेरी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो गईं।'

इस प्रकार कहते हुए महर्षि ने पुनः शिशु को प्रणाम किया। उनके नेत्रों से निरन्तर प्रेमाश्रुधारा प्रवाहित थी। अन्त में उनके मुख से निकला—'यह पृथ्वी, यह सरोवर, यह अरण्य, इसके ऊपर का आकाश एवं यहाँ चलने वाली वायु भी कृतकृत्य हो गई है। यह शृगाल भी, जो इनके दर्शन पा चुका है, अवश्य ही धन्य हो गया। परन्तु, ऐसा निष्ठुर एवं अभागा कौन है, जिसने इस महा—महिम-सम्पन्न जगदीश्वर को इस प्रकार यहाँ ला पटका है ?'

महर्षि ने पुनः साष्टांग प्रणाम कर शिशु को गोद में उठाया और उल्लसित हृदय से आश्रम की ओर चल पड़े। वहाँ उनकी पत्नी वत्सला ने महर्षि को एक बालक लाते हुए देखा तो उत्सुकता से उधर बढ़ीं। महर्षि ने बताया—'देवि ! यह शिशु उस सरोवर के तट पर पड़ा था, जो निविड़ अरण्य में विद्यमान है। लगता है कि कोई क्रूर हृदय अभागा इसे वहाँ छोड़ गया है।'

वत्सला ने शिशु को देखा तो हर्ष से बोल उठी–'कितना अद्‌भुत और अलौकिक है ! इसका असाधारण रूप ही इसकी विशेषता का प्रमाण है ।' पराशर ने पत्नी को समझाया–'यह साक्षात् त्रिलोकीनाथ हैं । यह सदैव भक्तों के कष्ट निवारणार्थ अवतार लेते हैं । इन परब्रह्म परमेश्वर ने मेरा जन्म और जीवन सभी कुछ सफल कर दिया । हमारे सब पूर्व-पुरुष भी धन्य हो गए ।'

महर्षि के मुख से शिशु की अनिर्वचनीय महिमा सुनकर शिशु को हृदय से लगा लिया और आनन्द में मग्न होती हुई बोली–'स्वामिन् ! शिशु रूप में इस प्रकार सहसा परमपिता परमात्मा का प्राप्त होना आपकी दीर्घकालीन तपस्या का ही प्रत्यक्ष फल है । देखो ! जो परब्रह्म कोटि जन्म पर्यन्त तप करते रहने पर भी दर्शन नहीं देते, वे अनायास ही हमारे मन, वाणी और इन्द्रियों के विषय हो गए हैं । उनकी इस महती कृपा के लिए हम किस प्रकार आभार व्यक्त करें !'

मातृ-स्नेह की अधिकता और शिशु के स्पर्श से ऋषिपत्नी के स्तनों में दूध आ गया और वे अत्यन्त स्नेह से शिशु गजानन को दूध पिलाने लगीं । महर्षि समझ गये कि समस्त जप, तप, यज्ञ एवं स्वाध्यायादि कर्म जिनके उद्‌देश्य से किये जाते हैं, वे प्रभु साक्षात् ही विराजमान हैं । अपनी इस धारणा के कारण उन्हें अब उन कर्मों की अधिक चिन्ता नहीं रही थी । केवल यम-नियमों का निर्वाह मात्र करते हुए वे शिशु के निकट ही अपना अधिकांश समय व्यतीत किया करते । जपादि भी करते तो शिशु के समक्ष बैठकर ही । इस प्रकार पति-पत्नी दोनों ही गजानन भगवान् की सेवा, लालन-पालन में लगे रहते ।

यद्यपि महर्षि का आश्रम पहिले ही सुन्दर और भव्य था, किन्तु शिशु रूप भगवान् के वहाँ आने पर तो वह और भी मनोरम हो गया, उसमें दिव्यता बढ़ती गई । सूखे वृक्ष भी हरे हो गये और उनपर जो फल लगते वे अत्यन्त स्वादिष्ट । आश्रम की गौएँ कामधेनु के समान अमृतोपम दूध

देने वाली हो गईं । अन्य पशु-पक्षी भी मनोहर प्रतीत होने लगे । कीर, चकोर, मयूर आदि की वाणी अलौकिक एवं दिव्य थी । हिरनों के समूह आनन्द-विभोर हुए छलाँग मारते हुए फिर रहे थे । माहिष्मती-नरेश वरेण्य को उनके एक दूत ने सम्वाद दिया–'राजेन्द्र ! आपके शिशु का पालन-पोषण महर्षि पराशर कर रहे हैं । उनकी पत्नी उसे अपने पुत्र के समान स्नेह प्रदान करती है ।'

उक्त संवाद से राजा को बहुत प्रसन्नता हुई और उन्होंने रानी से कहा–'प्रिये ! यदि शिशु में कोई विशेषता न होती तो पराशर दम्पति उसका पालन-पोषण क्यों करते ? पुत्र तो पुत्र ही है, उसके बाह्य रूप से भी भयभीत हो जाना कोई बुद्धिमानी नहीं थी । अब हमें उसका जन्मोत्सव तो मनाना ही चाहिए ।'

रानी ने सहमति व्यक्त की और तब राजा वरेण्य ने बड़ी धूम-धाम से पुत्रोत्सव मनाया तथा ब्राह्मणों को उनकी मनवाञ्छित वस्तुएँ दान दीं और उन्हें विविध भाँति के भोजन से तृप्त करके पुत्र की दीर्घायु के लिए आशीर्वाद प्राप्त किया ।

सिन्दूरासुर को आकाशवाणी द्वारा चेतावनी

एक दिन सिन्दूरासुर अपनी सभा में बैठा था । सभासद् एवं अमात्यगण उसकी प्रशंसा कर रहे थे । तभी उसने कहा–'इन्द्रादि में से किसी भी देवता ने मेरे समक्ष आने का साहस नहीं किया और ब्रह्मा-विष्णु तो सामने रहकर भी प्राणों की भीख माँगने लगे । इधर मर्त्यलोक में भी ऐसा कोई वीर नहीं निकला जो मुझसे युद्ध कर सकता । इससे मैं यही समझता हूँ कि मेरी अतुलनीय शक्ति एवं पौरुष व्यर्थ हो रहा है । क्योंकि मेरी युद्ध की अभिलाषा को पूर्ण करने वाला कोई वीर ही दिखाई नहीं देता ।'

तभी सहसा उसने सुना, आकाशवाणी थी—'अरे मूढ़ ! राक्षस ! तू व्यर्थ ही क्यों प्रलाप करता है ? तेरी युद्ध की अभिलाषा को पूर्ण करने वाला वीर शिव-शिवा के यहाँ अवतरित हो गया और वह शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान नित्य प्रति बढ़ता जा रहा है ।'

असुर ने आकाशवाणी सुनी तो बड़ा चकित और आशंकित हुआ । भय के कारण उसे मूर्च्छा तक आ गई । जब चेत हुआ तो उसने अमात्यों से पूछा—'इस प्रकार के कुवाक्य कहने वाला यह कौन है ? यदि सामने आ जाये तो मैं उसे प्राणविहीन कर डालूँ ।'

यह कहकर उसने घोर गर्जना की और 'मैं उस शिव को ही देखता हूँ' कहता हुआ तुरन्त ही द्रुत वेग से कैलास की ओर दौड़ पड़ा । उसने सोचा—'पार्वती के पुत्र को बड़ा ही क्यों होने दूँ ? मैं उसे आज ही मार डालूँगा, तब वह क्या करेगा ?'

इस प्रकार वनों को नष्ट करता और पर्वतों को चूर्ण करता हुआ सिन्दूरासुर शीघ्र ही कैलास पर जा पहुँचा । किन्तु पार्वती जी के भवन में किसी को भी रहता न देखकर वह वहाँ से उसी समय लौटकर पृथ्वी पर आ गया ।

अब शिव-शिवा को खोजता हुआ वह राक्षस धरती पर सर्वत्र चक्कर काटने लगा । उसने सोच लिया, 'बालक जहाँ भी होगा, वहीं मार डालूँगा ।' अन्त में वह पर्यली-वन में पहुँच गया । वहाँ एक स्वच्छ जल सम्पन्न सरोवर तथा शिव-शिवा का विशाल मण्डप था । उस मण्डप के आस-पास एवं चारों ओर शिवगण विद्यमान थे । वह समझ गया कि यहीं कहीं बालक के साथ पार्वती भी होगी ।

उसने पार्वती जी का भवन खोज लिया । उसके अन्तर्गत रहे प्रसूतिगृह में अनेक चक्कर लगाये, किन्तु शिशु न मिला । यह देखकर उसे लगा कि अभी शिशु का जन्म नहीं हुआ है । उसने सोचा—'यदि बालक अभी

उत्पन्न न हुआ तो पार्वती के उदर से ही तो उत्पन्न होगा । इसलिए पार्वती को ही क्यों न मार दिया जाये ? न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी ।'

६३ ऐसा निश्चय कर सिन्दूर ने पार्वती को मारने के लिए हाथ में शस्त्र सँभाला ही था कि उसे उनकी गोद में अत्यन्त तेजस्वी चतुर्भुज शिशु दिखाई दिया । इसलिए उसने शस्त्र तो रख लिया और शिशु का हाथ पकड़कर उसे समुद्र में डुबा देने के विचार से उठा ले चला ।

शिशु उस समय बहुत हल्का प्रतीत हुआ, इसलिए असुर उसे लेकर द्रुतगति से आगे बढ़ा । किन्तु मार्ग में शिशु पर्वत के समान भारी हो गया, इसलिए अब वह उसे ले जाने में अपने को असमर्थ पाने लगा । भार के कारण उसके पाँव डगमगाये तो उसने क्रोधपूर्वक उसे धरती पर वेग से पटक दिया ।

बस, फिर क्या था ! पृथ्वी काँप उठी, पर्वत हिल गए, अनेकों वृक्ष गिर गये, समुद्र क्षुब्ध हो उठा—और ऐसी भीषण ध्वनि हुई जैसे ब्रह्माण्ड ही विदीर्ण होने जा रहा हो । सब ओर प्रकृति में क्षोभ ही क्षोभ प्रतीत होता था । वायु की प्रचण्डता भी अभूतपूर्व थी । बालक नर्मदा नदी में गिरा था, इसलिए उसका नाम 'नार्मद गणेश' हुआ । जहाँ गिरा, वह स्थान 'गणेशकुण्ड' के नाम से विख्यात हुआ । शिशु के शरीर से रक्त निकला, जिससे वहाँ के पाषाण भी लाल वर्ण के हो गये थे ।

सिन्दूरासुर ने समझा कि 'मेरा शत्रु मर गया' इसलिए वह अत्यन्त प्रसन्न होता हुआ वहाँ से चलने को हुआ, तभी एक भयंकर ध्वनि हुई तथा कुण्ड से एक अत्यन्त विकराल एवं पर्वताकार पुरुष निकला । क्रोध के कारण उसके नेत्र अंगार जैसे जल रहे थे । विशाल जटाएँ, भयंकर मुख और दाढ़-दाँत, सर्पिणी के समान जिह्वा, हाथ—पाँव अत्यन्त लम्बे और पुष्ट । सिन्दूरासुर उसे देखकर कुछ चकराया, फिर सँभलकर आगे बढ़ा ।

सिन्दूरासुर ने गर्जन कर उस पुरुष पर तलवार से प्रहार किया । तभी

वह पुरुष आकाश की ओर द्रुतगति से उठता हुआ बोला–'अरे मूढ़ ! कुछ धैर्य रख, तेरा काल क्षण-क्षण पर बढ़ता जा रहा है । वह संतजनों की रक्षा के लिए तुझे अवश्य मारेगा ।'

विकराल पुरुष आकाश में जाकर अदृश्य हो गया । सिन्दूर को उस समय विस्मय तो बहुत हुआ, किन्तु अपने बल की डींग हाँकने की दृष्टि से उसने कहा–'उस कटुभाषी भयानक पुरुष को धिक्कार है जो मेरे भय के कारण आकाश में जा छिपा ! यदि वह सामने रहता तो मैं उसे अपना पराक्रम दिखा देता ।'

वह कुछ देर वहाँ खड़ा रहा । फिर सब दिशाओं में कहीं किसी को न देखकर अन्त में सेवकों के साथ अपनी राजधानी सिन्दूरवाड़ जा पहुँचा, किन्तु अपने काल के विषय में लगी हुई चिन्ता दूर करने के प्रयत्न से भी दूर नहीं हो रही थी ।

इधर असुर के उत्पात से व्यग्र हुई माता अब उस पार्वती-कानन में नहीं रहना चाहती थीं । उन्होंने शिवजी से कहा–'प्रभो ! यहाँ भी उपद्रव होने लगे हैं, इसलिए मुझे शीघ्र ही अपने साथ कैलास ले चलिए ।'

शिवा की इच्छा जानकर शिवजी ने उन्हें वृषभ पर अपने साथ बैठाया और सभी गणों के मध्य रहकर कैलास की ओर चल दिए । वहाँ पहुँचकर पार्वतीजी को निश्चिन्तता हुई ।

क्रौंचगन्धर्व को मूषक होने का शाप

एक समय की बात है–अमरावती में देवताओं की सभा जुड़ी थी । देवराज इन्द्र अपने राजसिंहासन पर विराजमान थे । उस समय गन्धर्वराज क्रौंच भी वहाँ उपस्थित था । उसे किसी कार्यवश शीघ्र कहीं जाना था । इसलिए उसने देवराज से आज्ञा ली और उठकर चलने लगा । तभी शीघ्रता में उसका ध्यान वहाँ बैठे हुए महर्षि वामदेव पर न गया और भूल

से उसका पाँव महर्षि को छू गया। इसमें महर्षि ने अपना अपमान समझा।

महर्षि क्रोधित हो गये। उन्होंने तुरन्त ही उसे शाप दे डाला—'अरे मूर्ख गन्धर्व! ऐसा मदमत्त हो रहा है कि बैठे हुए मुझ शान्त मुनि को लात मारता है। जा तू मूषक बनेगा।' गन्धर्व उस शाप को सुनकर भयभीत और व्याकुल हो गया। उसने महर्षि से क्षमा माँगी, रोया, गिड़गिड़ाया तो महर्षि को दया आ गई। वे बोले—'तू मूषक तो अवश्य होगा, किन्तु देवाधिदेव गजानन का वाहन होने के कारण अत्यन्त सुखी होगा। उनकी कृपा से तेरा सब दुःख दूर हो जायेगा।'

बेचारा गन्धर्व! किसी विशेष कार्य की शीघ्रता में उठकर तो जा रहा था, किन्तु मुनिवर से पाँव लगने में सावधानी न बरत सका। इसका दण्ड मिला उसे मूषक शरीर में धरती पर पहुँचने का। यही हुआ—वह तुरन्त ही मूषक होकर महर्षि पराशर के आश्रम में जा गिरा।

वह मूषक भी आकारादि में अलौकिक था, पर्वत के समान विशालकाय और भयंकर था। उसके रोम एवं नख भी पर्वत-शिखर के समान लगते। दाँत बहुत बड़े तीक्ष्ण और भयोत्पादक थे और उसका स्वर भी अत्यन्त कर्कश और भयावना था।

पराशर आश्रम में गिरते ही उस मूषक ने उपद्रव आरम्भ कर दिया। मृत्तिका पात्रों को तोड़-फोड़कर उनमें भरा हुआ समस्त अन्न खा लिया। वल्कल, वस्त्र एवं ग्रन्थादि कुतर-कुतर कर नष्ट कर डाले। आश्रम की वाटिका नष्ट-भ्रष्ट कर डाली, उसके फूल-फल, पौधे आदि को, बड़ी हानि पहुँचाई तथा पुच्छ प्रहार से वृक्षों को धरती पर गिरा दिया।

उसके इस प्रकार के विनाश कर्म से महर्षि बड़े दुःखित हुए। उन्होंने सोचा कि इस दुष्ट मूषक को यहाँ से कैसे भगाया जाये? यदि इसका कोई उपाय न हुआ तो यह और भी अधिक विनाश कर बैठेगा। इसे मारना भी सम्भव नहीं है और फिर मारने से जीव-हत्या का पाप भी

लगेगा ही । उस पाप को हम क्या अपने सिर लें? हे प्रभो! हे अशरण-शरण ! मेरा यह दुःख शीघ्र दूर कीजिए । इस दुष्ट मूषक से रक्षा कीजिए स्वामिन्!' महर्षि को अधिक व्याकुल देखकर भगवान् गजानन ने उन्हें मधुर वाणी में आश्वासन दिया–'पूज्य महर्षे ! आप मेरे पालक पिता हैं, मेरे रहते आप पर कोई विपत्ति आये, यह मैं सहन नहीं कर सकता । आपका प्रिय कार्य करना मेरा परम कर्त्तव्य है । मैं इस मूषक को अपना वाहन बनाये लेता हूँ, जिससे इसके उत्पात समाप्त हो जायें ।' यह कहकर उन्होंने मूषक की ओर अपना तेजस्वी पाश फेंका, जिससे आकाश तक प्रकाशमान हो उठा । उसके भय से देवता भी अपने स्थान से भाग गये । वह पाश दशों दिशाओं में घूमता हुआ पाताल तक जा पहुँचा और धरती खोदकर उसमें प्रविष्ट होते हुए मूषक का कण्ठ जकड़कर उसे बाहर खींच लाया । पाश की जकड़ ने उसे व्याकुल और मूर्च्छित कर दिया ।

फिर जब उसे चेत हुआ तब वह शोकग्रस्त होता हुआ कहने लगा–'सहसा यह क्या हो गया? मैं अत्यन्त पुरुषार्थी हूँ । मैंने अपने दंष्टाग्र से बड़े-बड़े वृक्षों और पर्वतों तक को नष्ट कर डाला । ऐसे मुझ महा पराक्रम का कण्ठ किसने बाँधा है?'

गणेश का प्रिय वाहन मूषक

पाश ने मूषक को भगवान् गजानन के समक्ष उपस्थित किया तो उसे प्रभु के दर्शन से ज्ञान होने लगा । वह अपनी स्थिति को ठीक प्रकार से समझता हुआ हाथ जोड़कर बोला–'जगदीश्वर ! आपके दर्शन करके मेरा जीवन सफल हो गया । आप देव, दानव, मनुष्य, उरग, यक्ष, किन्नर आदि सभी पर दया करने वाले हैं । हे नाथ ! मुझ अज्ञानी जीव पर भी दया कीजिए ।'

भगवान् विनायक प्रसन्न हो गए । उन्होंने कहा, 'मूषक ! तू क्षमा के

योग्य नहीं था, क्योंकि तूने ऋषियों को बहुत कष्ट दिया है। किन्तु तू मेरी शरण में आ गया है, इसलिए अब भय रहित हो जा और जो कुछ चाहे, वह वर माँग ले।'

मूषक ने सोचा, मुझे कोई क्या देगा ? और फिर माँगूँ भी किसलिए ? ऐसा विचार कर उसने कहा–'मुझे तो कुछ भी नहीं चाहिए। यदि आपकी कुछ इच्छा हो तो मुझसे ही वर माँग लीजिए।' गणेश्वर ने कहा–'अच्छा, तू मुझे वर देना चाहता है तो बस इतना ही वर दे कि मेरा वाहन बन जा।'

मूषक ने स्वीकारोक्ति की तो पराशर-नन्दन तुरन्त उसकी पीठ पर आरूढ़ हो गये। बेचारा मूषक सभी भारों के स्थान उन विनायकदेव का भार कैसे सहन कर सकता था ? उसे लगा कि अब पिसा, अब पिसा। प्राण संकट में देखकर उसने भगवान् से प्रार्थना की–'प्रभो ! मुझपर प्रसन्न होइए। हे दयानाथ ! दया कीजिए और इतने हल्के हो जाइए कि आपके बोझ से मुझे कुछ न हो और मैं सरलता से आपका वहन, कर सकूँ।'

भगवान् ने समझ लिया कि मूषक का गर्व खण्डित हो गया है तो उन्होंने अपना भार घटा लिया और उसके द्वारा वहन होने योग्य हल्के हो गये। महर्षि पराशर ने यह लीला देखी तो उन्होंने गजानन के पदपंकज में प्रणाम कर कहा–'प्रभो ! कैसे आश्चर्य का विषय है कि जो मूषक बड़े-बड़े वृक्षों को गिरा चुका था और जिसके भयंकर शब्द से पर्वत भी कम्पायमान हो रहे थे, वह क्षणभर में ही आपका वाहन बन गया। ऐसा पौरुष किसी सामान्य बालक में कहीं नहीं देखा जाता।'

ऋषि-पत्नी भी आश्चर्य चकित हुई गजमुख को देख रही थीं। फिर उसने पुत्र को लेकर स्तनपान कराया और सुला दिया। दूसरे दिन गणेश ने मूषक के कण्ठ में एक रस्सी बाँधी और उसके साथ अनेक प्रकार की क्रीड़ा करने लगे।

❀❀❀

५. पञ्चम अध्याय

मूषक गणेश का वाहन

गजमुख धीरे-धीरे बढ़ने लगे । उन्होंने नौ वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते सभी वेद-वेदाङ्ग, उपनिषद्, स्मृति, नीति-शास्त्र, धर्म-शास्त्र पुराणादि का अध्ययन कर लिया और सभी विद्याओं में पारंगत हो गये। उनकी बाल-क्रीड़ाओं को देख-देखकर समस्त ऋषि-मुनि और उनकी पत्नियों को बड़ी प्रसन्नता होती थी ।

उनकी क्रीड़ाओं में भाग लेने वाले मुनिकुमारों को उनके नेतृत्व में आनन्द आता था और वे समर्पित सेवक के समान उनके आदेशों का पालन करते थे । इस प्रकार भगवान् गजानन सभी ऋषियों, ऋषि-पत्नियों और ऋषिकुमारों के प्रीतिभाजन बने हुए थे ।

उधर सिन्दूरासुर के अत्याचार बढ़ रहे थे । उसके भय से देवता, ऋषि-मुनि, सदाचारी, भक्त तथा साध्वी स्त्रियाँ घर छोड़ अन्यत्र छिपे रहते थे । उसने यज्ञादि कर्म करने वालों को दण्ड देना अपना कर्त्तव्य मान रखा था । लूट-खसोट बढ़ रही थी, हत्याएँ करने में किसी को भय नहीं होता था । स्त्रियों का अपहरण साधारण-सी बात थी ।

धन, सम्मान और धर्म किसी का भी सुरक्षित न था । असुर की आज्ञा थी कि राजाज्ञा ही सर्वोपरि है । शास्त्रादि सभी कुछ राजाज्ञा में ही निहित हैं । ईश्वर कोई नहीं, केवल राजा ही ईश्वर है । उसी की पूजा होनी चाहिए । जो लोग राजा को प्रसन्न नहीं रख सकते उन्हें जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं है ।'

जिसने उसके इस सिद्धान्त को अमान्य किया, उन राजद्रोहियों को सीधे प्राणदण्ड की व्यवस्था थी । इसलिए खुलकर तो कोई भी राजाज्ञा

का निरादर करता ही न था, कभी कोई परोक्ष में भी आज्ञा का निरादर नहीं कर पाता था। भूल से जो सत्यप्रिय एवं धर्मज्ञ व्यक्ति वैसा कर भी बैठे तो तुरन्त कारागृह में डाल दिये गए अथवा अनेकों के प्राण ले लिये गए।

प्रजाजनों, मुनियों आदि की गतिविधियों पर कड़ी दृष्टि रखी जाने लगी। न जाने कितने गुप्तचर केवल इसी कार्य पर लगे थे। राजा के समक्ष जाकर वे झूठ-सच जो कुछ भी कह देते वह सब विश्वसनीय माना जाता था।

जब घोर अत्याचार बढ़े तो विश्व काँप उठा। सभी प्राणी त्रसित हो कहे थे। मांस–मदिरा का जोर बढ़ने के कारण असंख्य जीवों की हत्या हो चुकी थी। हजारों दुधमुहे अबोध बालकों को काल के गाल में डाल दिया गया था। महिलाएँ अपनी निधि को सुरक्षित रख सकने में असमर्थ हो रही थीं। यह सब सम्वाद समय-समय पर पराशर-आश्रम में भी पहुँचते रहते थे।

गजानन का युद्ध के लिए प्रस्थान करना

एक दिन कुछ ब्राह्मणों ने सिन्दूरासुर की निर्दयता और अधिक क्रूरता की बात वहाँ आकर सुनाई तो भगवान् गजानन अधिक अधीर हो गए और उन्होंने विचार किया कि 'किसी प्रकार संसार को भयंकर त्रास से बचाना ही होगा' अतः वे महर्षि के समीप आकर और चरणों में प्रणाम कर कहने लगे–'पूज्य पिताजी ! दुष्ट सिन्दूरासुर के अत्याचारों के विषय में यहाँ कभी-कभी ही समाचार आ पाते हैं। किन्तु, वे सब इतने दुखद होते हैं कि सुनकर चित्त काँप उठता है। वस्तुतः उसके अत्याचारों से मुक्त होने का तब तक कोई उपाय नहीं हो सकता, जब तक उसपर शासन करने और उसे दण्ड देने में सक्षम व्यक्ति उसे न रोके। जब तक उसे रोका नहीं जायेगा, तब तक सभी सदाचार-परायण जन पीड़ित ही होते रहेंगे।'

महर्षि अपने लाड़ले पुत्र का अभिप्राय समझ न पाये । उन्होंने सोचा–'जैसे अन्य सब लोग सामयिक चर्चाओं में भाग लिया करते हैं, वैसे ही यह भी ले रहा है । अच्छा है, ऐसी चर्चाओं में भाग लेने से योग्यता बढ़ती है और व्यक्तित्व भी निखरता है ।' इसलिए उन्होंने पुत्र को प्रोत्साहन देते हुए उसका समर्थन किया–'ठीक कहते हो पुत्र ! जब तक दैत्यराज के कार्यों में अवरोध उत्पन्न नहीं होगा, तब तक सदाचारी जनों की पीड़ा बढ़ती ही जायेगी और कभी-न-कभी कोई सक्षम पुरुष उसको वश में करेगा ही । क्योंकि संसार में जब अत्याचारियों के अत्याचार बढ़ जाते हैं, तब कोई अवतारी पुरुष अवश्य प्रकट होता है ।'

गजानन ने विनम्रता से कहा–'प्रभो ! यदि आप आज्ञा दें तो यह कार्य मैं कर सकता हूँ । वस्तुतः उसके द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों को सुनकर मैं व्याकुल हो रहा हूँ । आप अपना वरद-हस्त मेरे मस्तक पर रखकर आशीर्वाद दें, जिससे कि संसार के उपकार का यह पवित्रतम कार्य करने में समर्थ हो सकूँ ।'

गजानन की बात सुनकर महर्षि को हँसी आ गई और फिर उत्साह देखकर कुछ आनन्द भी हुआ । फिर उन्होंने स्नेहसिक्त वचनों में उन्हें समझाते हुए कहा–'पुत्र ! तेरा सोचना तो ठीक है, किन्तु तेरी आयु अभी नौ वर्ष की है । बाल-सुलभ क्रीड़ा वाला स्वभाव और सुकुमार शरीर धरती पर रहकर चन्द्रमा को छूने के कुलावे तो भिड़ा सकता है, किन्तु वहाँ पहुँच नहीं सकता । बेटा ! सिन्दूरासुर विशालकाय एवं असीमित बल से सम्पन्न है । वह ब्रह्माजी से वर प्राप्त होने के कारण अजेय भी हो रहा है । इसलिए उसे तो कोई अत्यन्त शक्तिशाली पूर्ण वयस् पुरुष ही मार सकेगा ।'

महर्षि की बात सुनकर गजमुख ने पुनः विनम्र भाव से निवेदन किया–'महर्षे ! मुनिनाथ ! आप मेरे परम पूजनीय हैं, आपसे अपने विषय में अधिक कहना कुछ उचित नहीं होगा । मैं केवल इतना ही कह सकता

हूँ कि असुर का वध मैं अवश्य ही कर डालूँगा । आप आशीर्वाद तो दीजिए मुझे ।'

मुनि ने शंका व्यक्त की–'पुत्र ! मेरे हृदय ! जिस सिन्दूरासुर के गर्जन मात्र से सब दिशाएँ काँप जाती हैं, जिसके पदाघात से त्रिभुवन में हाहाकार मच जाता है, उस अपरिमित पराक्रम वाले असुर से केवल मेरे आशीर्वाद से ही युद्ध करना चाहते हो तो वह सदैव तुम्हारे साथ ही है । किन्तु केवल आशीर्वाद से ही काम चल जाता तो सिन्दूरासुर क्या, किसी भी दुष्ट का ऐसा साहस न होता कि उससे समस्त विश्व ही त्रसित हो सकता ।'

गजानन ने अपने पालक पिता को विश्वास दिलाने के लिए घोर गर्जन किया, जिसे सुनकर समस्त संसार काँप उठा । देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, किन्नर, यक्षादि सभी भयभीत हो गए । अनेक पर्वत-शिखर और वृक्ष धराशायी हो गए । यहाँ तक कि सिन्दूरासुर भी सोचने लगा कि यह क्या है ? ऐसा प्रलयंकारी शब्द तो पहिले कभी सुना ही न था ।'

प्रकृतिस्थ होकर उन्होंने पुनः हाथ जोड़कर निवेदन किया–'ऋषिश्रेष्ठ ! मेरा प्राकट्य ही सिन्दूरासुर एवं उसके साथी दैत्यों को मारकर पृथ्वी का भार हल्का करने के लिए हुआ है । मैं अवश्य ही उस राक्षसराज को मारकर ऋषि-मुनियों का हित साधन करूँगा । वह मेरे हाथों अवश्य ही मारा जायेगा । केवल आपकी आज्ञा और आशीर्वाद का सम्बल मेरे साथ रहने से यह कार्य सहज ही सम्पन्न हो जायेगा ।'

महर्षि को विश्वास हो गया । फिर उन्हें ज्ञात हुआ–'अरे, यह तो पूर्ण परमात्मा हैं, इनकी शंका कैसी ? मैं मोहवश इनके कार्य में व्यर्थ ही व्यवधान डाल रहा हूँ ।'

फिर उन्होंने गजमुख को हृदय से लगाया और उनके मस्तक पर वरदहस्त रखते हुए शुभकामना व्यक्त की–'पुत्र ! भगवान् चन्द्रचूड़ तुम्हें विजय प्राप्त करावें । मेरा आशीर्वाद है कि राक्षसराज सिन्दूर को मारने में तुम्हें सफलता प्राप्त हो ।'

ऐसा कहकर महर्षि स्नेहवश उनके मस्तक पर बहुत देर तक हाथ फेरते रहे। गजानन ने उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और माता से आज्ञा माँगी–'माता ! मुझे आज्ञा और आशीर्वाद दो कि मैं अधर्म के नाश और धर्म की स्थापना में समर्थ हो सकूँ।'

वत्सला की आँखों में आँसू आ गए। नौ वर्ष तक लाड़-प्यार से पाले हुए पुत्र का वियोग उसे व्याकुल करने लगा। उसने किसी प्रकार समझाने का प्रयत्न किया–'प्राणप्रिय पुत्र ! मेरे गजानन ! कहाँ तू छोटा-सा बालक और कहाँ वह त्रैलोक्य विजेता राक्षस ? भला कौन ऐसी निष्ठुर माता होगी जो अपने पुत्र को स्वयं जम्बूक के समक्ष फेंक दे ? मेरे लाल ! अभी समर्थ हो जाओ, तब जो चाहो वही करना।'०

गजानन ने विनीत भाव से कहा–'माता ! आपका आशीर्वाद ही मुझे समर्थ बना देगा। अब उस राक्षस का अन्त समय निकट आ गया है, इसलिए मुझे आज्ञा देने की कृपा कीजिए।'

ऋषि-पत्नी ने उनके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा–'पुत्र ! मेरा आशीर्वाद तेरे साथ है। मैं तुझे अभीष्ट पूर्ति के लिए जाने की आज्ञा देती हूँ और कामना करती हूँ कि अवश्य ही विजय प्राप्त हो।'

तदुपरान्त गजानन ने महर्षि पराशर और माता वत्सला को प्रणाम किया और उपस्थित ऋषि-समुदाय को भी नमस्कार कर मूषक पर आरूढ़ हुए और चलते समय भयंकर गर्जना की, जिससे तीनों लोक काँप उठे। उनका तेजस्वी मुखमण्डल अग्नि-ज्वाला के समान देदीप्यमान हो रहा था।

सिन्दूरासुर का भगवान् गजानन के साथ युद्ध

सिन्दूरासुर की राजधानी का नाम सिन्दूरबाड़ था। यह स्थान घृसृणेश्वर के निकट है। राक्षसराज वहीं रहता हुआ तीन लोकों पर शासन

कर रहा था। गजानन पराशर आश्रम से वायुवेग से चलते हुए सिन्दूरबाड़ के उत्तर की ओर आकर सिंह-गर्जना करने लगे, जिसके फलस्वरूप भूकम्प आ गया। समूची नगरी त्राहि-त्राहि कर उठी। समुद्र में आकाश तक जाने वाली तरंगें उठने लगीं। उस स्थिति से अनेक वीर मूर्च्छित हो गये। यहाँ तक कि सिन्दूरासुर भी मूर्च्छित हो गया।

दैत्यराज को चेत हुआ तो वह सोचने लगा कि ऐसा कौन वीर यहाँ आ गया, जिसकी भयंकर गर्जना से मैं भी मूर्च्छित हो गया ! उसने अपने अनुचरों को आज्ञा की—'जाओ, उसका पता लगाओ जो यहाँ आकर गर्जना कर रहा है। यदि ला सको तो साथ ही पकड़कर मेरे सामने ले आओ।'

अनुचर दौड़े। उन्होंने बाहर जाकर गजानन का अत्यन्त भयंकर और अद्‌भुत रूप देखा तो भय से काँप उठे। फिर कुछ साहस कर उनके कुछ निकट पहुँचकर बोले—'अरे ! तुम कौन हो ? अभी तो नौ-दस वर्ष के छोटे से बालक ही प्रतीत होते हो। क्या तुम्हें महापराक्रमी, त्रैलोक्य विजयी असुरराज सिन्दूर की शक्ति का ज्ञान नहीं है, जो उनके राज्य की सीमा पर ऐसी गर्जना कर रहे हो ?'

गजमुख ने क्रोधपूर्ण मुद्रा में कहा—'दैत्यो ! मुझे तुम्हारे स्वामी की शक्ति का भली प्रकार से पता है और मैं उसी का वध करने के उद्‌देश्य से यहाँ आया हूँ। मैं शिव-शिवा का पुत्र गजानन हूँ। तुम सभी अधर्मी राक्षसों को मारकर संसार में धर्म की स्थापना करूँगा। जाओ, मेरा यह संदेश अपने राजा से कह दो।'

अनुचरों ने अपने स्वामी की सेवा में उपस्थित होकर कहा—'राजेन्द्र ! बाहर जो गर्जन कर रहा है वह शिव-शिवा का पुत्र गजानन है। उसकी आयु अभी नौ-दस वर्ष से अधिक नहीं होगी। वह आप जैसे महाबली से युद्ध करने, दैत्यवंश का नाश करने और मुनियों की रक्षा करने के लिए

ही यहाँ आ गया है । हमें आश्चर्य है कि मच्छर के समान मूर्ख बालक आप जैसे अद्वितीय वीर के समक्ष कैसे टिकेगा ?'

सिन्दूर ने अनुचरों से उक्त संवाद सुना तो आकाशवाणी का स्मरण हो गया । किन्तु फिर सँभलकर क्रोध करता हुआ उठा और अहंकार-पूर्वक बोला—'अरे ! वह छोटा-सा बालक बात-ही-बात में मसल डाला जायेगा ! उस बेचारे की क्या विसात है, जब बड़े-बड़े भूपाल मेरे कारागार में पड़े सड़ रहे हैं । अनेकों राजा और देवता अपने-अपने प्राणों की रक्षा के लिए निविड़ अरण्यों और गिरि-कन्दराओं में जा छिपे हैं ।'

फिर उसने घोर गर्जना की और युद्ध के लिए तैयार होने लगा । तभी उसके अमात्यों ने निवेदन किया—'महाराज ! उस छोटे से बालक के साथ आप स्वयं युद्ध करेंगे ? स्वामिन् ! फिर आपकी यह विशाल सेना किस उपयोग में आयेगी जो बहुत समय से युद्ध का अवसर न आने के कारण निष्क्रिय बैठी रही है ? आप अपने किसी एक सेनापति को आज्ञा दीजिए कि वह कुछ सेना साथ लेकर उस मुनि-बालक को पकड़ लाये अथवा वहीं मार दे । यदि हमें आज्ञा हो तो हम जायें । अकेले बालक को वश में करने के लिए तो किसी सेना की भी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती ।'

सिन्दूर ने अमात्यों के विचार का आदर और वीरता की प्रशंसा करने के पश्चात् कहा—'वीरो ! यद्यपि यह कार्य आप लोगों के द्वारा सहज में हो सकता था, किन्तु उस अहंकारी एवं दुराग्रही बालक को अपने हाथ से ही दण्ड देने का मैंने निश्चय किया है । इसलिए मैं स्वयं ही वहाँ जा रहा हूँ ।'

युद्ध में सिन्दूरासुर का मारा जाना

यह कहकर दैत्यराज शीघ्रता से गजानन के समक्ष जा पहुँचा और बोला—'अरे मूर्ख बालक ! तू तो ऐसा गर्जन कर रहा है, जैसे तीनों लोकों

को खा जायेगा। किन्तु, तू जानता नहीं कि मैंने तीनों लोकों को जीत लिया और ब्रह्मा, विष्णु, शिव सभी को वशीभूत कर लिया है ? फिर भी तू सुकुमार बालक है, तुझसे युद्ध करना मेरे लिए शोभा की बात नहीं है। अतएव तू अपनी माता की गोद में बैठकर दुग्धपान कर, व्यर्थ विवाद कर अपने प्राणों से क्यों हाथ धोना चाहता है ?'

गजानन ने अट्टहास किया और फिर बोले—'राक्षस ! तू अवश्य ही नीतिकुशल प्रतीत होता है। परन्तु क्या तू नहीं जानता कि अग्नि की एक सामान्य चिंगारी समूचे नगर को भस्म करने में समर्थ है। मैं अल्प बालक होकर भी तीनों लोकों को अकेला ही जीत सकता हूँ। मेरा प्राकट्य समस्त दैत्यों का संहार कर मुनिजनों को स्वच्छन्द करने के लिए हुआ है। मैं अधर्म का नाश कर धर्म की स्थापना करूँगा, फिर भी मैं तुझे एक प्रतिज्ञा करने पर छोड़ सकता हूँ कि तू अपने जीवन भर सदाचारी, धर्मरत मुनि-ब्राह्मणों का पूजन, सृष्टि के सभी प्राणियों के प्रति दया रखने वाला, न्यायवान् और प्रजापालक रहेगा। किसी की हिंसा नहीं करेगा तथा बन्दी नरेशों को तुरन्त मुक्त कर देगा। इस प्रकार की प्रतिज्ञा करता हुआ तू मेरी शरण में आ, अन्यथा तू अपना काल समीप आया जान।'

यह कहकर भगवान् गजानन ने उसे अपने विराट् रूप का दर्शन कराया। उनका सिर आकाश से जा लगा और चरण पाताल में प्रविष्ट हो गए। दशों-दिशाएँ कानों से आच्छादित हो गईं। विशाल भुजाओं का कहीं अन्त दिखाई नहीं देता था। उनके सहस्त्र शीश, सहस्त्र नेत्र, सहस्त्र भुजाएँ और सहस्त्र चरण थे। उनके शरीर पर दिव्य वस्त्रालंकार एवं दिव्य गन्ध लगी थी। उनका मुखमण्डल करोड़ों सूर्यों के समान दमक रहा था।

गजानन के उस रूप को देखकर सिन्दूरासुर भौंचक्का रह गया और भयभीत होकर पीछे हटा। किन्तु तुरन्त कुछ सँभलकर आगे बढ़ा और खड्ग खींचकर उनपर प्रहार करने के लिए प्रस्तुत हुआ ही था कि परमात्मा विनायकदेव ने उसका गला पकड़ते हुए उच्चस्वर में कहा—'अरे

मूर्ख ! तू अब भी मेरे दुर्लभ रूप को न जान सका । अब तेरा काल ही आ गया तो मैं क्या करूँ ?'

वे उसके कण्ठ को अपने वज्रसदृश हाथों से भींचने लगे । इस प्रकार उसके नेत्र बाहर निकल आये, जिह्वा लटक गई और प्राणपखेरू उड़ गए ! गजानन भगवान् ने उसका लाल रक्त अपने दिव्य शरीर पर लगा लिया । इस कारण वे 'सिन्दूरप्रिय' या 'सिन्दूरवदन' नाम से प्रसिद्ध हुए ।

सिन्दूरासुर का वध होते ही 'भगवान् गजानन की जय' का घोष करते हुए देवगण ने आकाश से पुष्प-वृष्टि की । अप्सराएँ नृत्यगान करने लगीं । अनेक प्रकार के सुमधुर वाद्य बजने लगे । सर्वत्र आनन्द की अद्भुत लहर दौड़ गई । ब्रह्माजी के नेतृत्व में समस्त ऋषि-मुनि, देवता आदि ने वहाँ आकर अनेक प्रकार के उपहार भेंट करके उनका षोड़शोपचार पूजन किया और भक्तिभाव-पूर्वक स्तवन करने लगे–

"यत्र कुण्ठाश्चतुर्वेदा ब्रह्माद्याश्च मुनीश्वराः ।
त्वं कर्त्ता कारणं कार्यं रक्षकः पोषकोऽपि च ॥"

'हे प्रभो ! जिनकी महिमा का गान करने में चारों वेद, ब्रह्मा आदि देवगण एवं मुनिगण भी कुण्ठित हैं, वहाँ हम तो वस्तु ही क्या हैं ? आप इस अखिल विश्व के कर्त्ता, कार्य, रक्षक एवं पोषक सभी कुछ हैं । संहारक, मोहक और ज्ञानदाता भी आप ही हैं । नदियाँ, समुद्र, वृक्ष, पर्वत, समस्त देहधारी वायु, आकाश, पृथिवी, अग्नि और जल भी आपके ही रूप हैं । ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, मरुद्गण मुनि, गन्धर्व, चारण, यक्ष, राक्षस, उरग, अप्सरा, किन्नर एवं अन्य समस्त चराचर विश्व आपसे भिन्न नहीं है । हमको आप मोक्ष-साधक परमात्मा के प्रत्यक्ष दर्शन हुए हैं, इसलिए हम सब आज अत्यन्त सौभाग्यशाली हैं । देव ! इस राक्षस के मारे जाने पर सभी देवगण सुखी हो गए हैं । अब सभी मुनिगण, नरेशगण एवं प्रजावर्ग के सभी व्यक्ति अपने-अपने कार्यों को प्रसन्नतापूर्वक

करेंगे तथा स्वधा, स्वाहा और वषट्कार के आश्रित जितनी भी क्रिया हैं, वे सब विघ्न-रहित रूप से होने लगेंगी । हे नाथ ! आप अनेक रूप में अवतार धारण कर लोक का पालन-कार्य विशिष्ट रूप से किया करते हैं । दुष्टों का विनाश और भक्तों की कामनाओं की तत्काल पूर्ति आपका स्वभाव ही है–

"नानावतारैः कुरुषे पालनं त्वं विशेषतः ।
दुष्टानां नाशनं सद्यो भक्तानां कामपूरकः ॥

इस प्रकार स्तुतियों से भगवान् को प्रसन्न कर देवताओं ने वहाँ एक भव्य मन्दिर बनवाया और उसमें गजानन भगवान् की अत्यन्त सुन्दर प्रतिमा स्थापित कर षोड़शोपचार से उनका पूजन किया । भगवान् की उस प्रतिमा के दर्शन मात्र से समस्त पाप दूर हो जाते हैं । उस प्रतिमा का नाम 'सिन्दूरहा' विख्यात हुआ तथा वह स्थान 'राजसदन' के नाम से प्रसिद्ध हो गया ।

❀❀❀

६. षष्ठ अध्याय

राजा वरेण्य का पश्चात्ताप वर्णन

राजा वरेण्य ने अपने पुत्र के द्वारा सिन्दूरासुर का वध हुआ सुना तो वे बड़े प्रसन्न हुए और वहाँ आकर भगवान् को 'दैत्य-विमर्दन' नाम से सम्बोधित करते हुए कहा–'प्रभो ! मैं आपकी ही माया के वश होकर आपके प्रभाव से अनभिज्ञ था । जिन अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के अधीश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और रूप को ब्रह्मादि देवता भी जानने में असमर्थ हैं, उन सर्वात्मा ब्रह्म को मैं अज्ञानी किस प्रकार जान सकता था ? मैंने

अपनी मूर्खता से ही घर में प्राप्त कामधेनु और कल्पवृक्ष रूप आप प्राणप्रिय परमात्मा को बाहर निकाल दिया था, अपने उस अनर्थ के लिए वस्तुतः मैं क्षमा किए जाने के योग्य नहीं हूँ। फिर भी मैं आपसे क्षमा के लिए प्रार्थना करता हूँ।'

राजा वरेण्य को पश्चात्ताप करते देख भगवान् वरदराज प्रसन्न हुए और राजा को अपनी भुजाओं से आलिंगन कर अभय देते हुए बोले–'राजन्! संसार में जो कुछ भी होता है वह मेरी ही इच्छा से होता है। तुम्हारा इसमें कोई दोष नहीं है। पूर्व कल्प में तुमने अपनी भार्या के साथ दिव्य सहस्त्र वर्ष तक घोर तपश्चर्या की थी, जिससे प्रसन्न होकर मैंने दर्शन देकर वर माँगने को कहा था। किन्तु तुम मुझ मोक्षदाता से मोक्ष न माँगकर मुझे ही पुत्र रूप में प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की थी। इसलिए तुम्हारे पुत्र रूप से प्रकट होकर मैंने सिन्दूर का वध किया और मुनिजनों, सन्तों, भक्तों, देवताओं का अभीष्ट सिद्ध किया है। महाराज! मेरे अवतार धारण का कार्य पूर्ण हो चुका है इसलिए मुझे अब स्वधाम गमन करना है।'

भगवान् के स्वधाम गमन की बात सुनकर राजा वरेण्य व्याकुल हो गये और उन्होंने हाथ जोड़कर निवेदन किया–'प्रभो! मैं इस भवसागर से मुक्त होना चाहता हूँ। इसलिए कृपा कर मुझे इसका उपाय बताने का कष्ट करें।'

गजानन को राजा पर दया आ गई। वे वहीं आसन पर विराजमान हुए और सामने राजा को बैठाकर उनके मस्तक पर अपना त्रिपातनाशक वरदहस्त रखा और उन्हें सारभूत ज्ञानोपदेश प्रदान किया। उस परम प्रभु की सन्निधि का स्पर्श एवं सुधोपम उपदेश से महाराज को वैराग्य उत्पन्न हो गया।

तभी भगवान् गजानन सभी के देखते अन्तर्धान हो गए। उधर राजा ने राजधानी में लौटकर अमात्यों को राज्य की बागडोर सौंप दी और स्वयं वन में तपश्चर्या करने चले गए।

कलियुग में धूम्रकेतु अवतार का वर्णन

'भगवान् गजानन का कलियुग में जो अवतार होगा, उसकी प्रसिद्धि 'धूम्रकेतु' नाम से होगी । जब कलियुग आयेगा तब सभी मनुष्य आचरणहीन एवं मिथ्यावादी हो जायेंगे । ब्राह्मण वेदाध्ययन, नित्य-नैमित्तिक कर्म, यज्ञ, तप, दान आदि का लोप हो जायेगा । सर्वत्र पाप-कर्म होने लगेंगे । परधन एवं परस्त्री-लोलुपता, काम-क्रोध, मोहादि की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जायेगी । समय पर वर्षा नहीं होगी तथा नदियों के किनारे खेती होने लगेगी ।'

बलवान लोग बलहीनों को सताने लगेंगे । उनकी धन-सम्पत्ति, स्त्री आदि को छीन लेंगे । ब्राह्मणों का कार्य अन्य वर्ण और अन्य वर्णों के कर्म ब्राह्मण करेंगे । सभी विद्वान् मूर्ख और धनहीन हो जायेंगे । लोग दूसरे के धन को लेकर हड़पने लगेंगे । सर्वत्र हाहाकार मच जायेगा ।

दूसरे से धन माँगने में किसी को संकोच नहीं होगा । लोग झूठी गवाही देने में संकोच नहीं करेंगे । मिथ्या धर्म उठाना एक साधारण बात होगी । सज्जनों की निन्दा और दुष्टों की सर्वत्र प्रशंसा होगी । छल-कपट सर्वत्र दिखाई देगा । धर्मज्ञों का अपकर्ष और अधर्मियों का उत्कर्ष होगा ।

मनुष्यों में देवपूजन के प्रति अरुचि और भूत-प्रेत, पिशाच की पूजा में उत्साह रहेगा । धूर्त लोग छद्मवेश बनाकर अपनी उदर-पूजा करेंगे । ब्राह्मण अपने कर्म को छोड़कर केवल पेटू बन जायेंगे । क्षत्रिय वीर धर्म को त्यागकर भिक्षाटन करने लगेंगे । वैश्य भी व्यवसाय बुद्धि से विरत होकर बिना परिश्रम किये धन बटोरने में लगे रहेंगे । माता-पिता और गुरुजनों के सम्मान का लोप हो जायेगा । सन्तान वर्णसंकर होने लगेगी ।

घोर कलियुग उपस्थित होने पर उक्त दोष अधिक बढ़ जायेंगे । स्त्रियाँ पथभ्रष्ट होने लगेंगी । अच्छे मनुष्यों के आचरण भी म्लेच्छों के समान हो जायेंगे । पृथ्वी की उर्वरा-शक्ति का ह्रास होगा और वृक्षों में रस

नहीं रहेगा । स्त्री-पुरुषों की पूर्ण आयु सोलह वर्ष की रह जायेगी । पाँच-छः वर्ष की आयु में प्रसव होने लगेंगे ।

देवताओं और तीर्थों का लोप हो जायेगा । धन का अर्जन ही जीवन का प्रमुख उद्देश्य रहेगा । ईर्ष्या-द्वेष, अहंकार एवं मानसिक ज्वाला सदैव दग्ध करती रहेगी । सर्वत्र अधर्म, अन्याय, अत्याचार, दुराचार आदि का बोलबाला रहेगा ।

जब कलियुग अपनी दारुण स्थिति पर पहुँच जायेगा, तब समस्त प्राणी अत्यन्त पीड़ित होंगे । उनमें वासनादि का विक्षेप अपनी चरम सीमा पर होगा । स्वाहा, स्वधा, वषट्कार के न होने के कारण देवताओं को भूखे रहना होगा । वे अत्यन्त त्रस्त हो जायेंगे और उपाय करके भी उस स्थिति से छुटकारा नहीं पा सकेंगे । तब उन्हें एक ही उपाय श्रेयस्कर प्रतीत होगा—भगवान् गजानन की शरण में जाना ।

वे सब एकत्र होकर उनकी शरण में आ जायेंगे और उन महाप्रभु को बारम्बार नमस्कार करते हुए, उनका अनेक उपचारों से पूजन करेंगे । उनका स्तवन करके, परिक्रमा आदि के द्वारा उन्हें सब प्रकार से प्रसन्न कर लेंगे । तब से परात्पर परमात्मा उनके संकट निवारण का आश्वासन देकर सभी को भय-रहित करेंगे ।

तदुपरान्त समय पाकर वे दयामय विनायक प्रभु पृथ्वी पर अवतार लेंगे । वे 'शूर्पकर्ण' एवं 'धूम्रवर्ण' के नाम से प्रसिद्ध होंगे । वे 'धूम्रकेतु' भी कहलायेंगे । उनका वाहन नीला अश्व होगा ।

शत्रुओं का संहार करने वाले वे प्रभु क्रोधावेश के कारण अत्यन्त तेजस्वी होंगे । उनकी देह से दिव्य ज्वाला निकली हुई प्रतीत होगी । तीक्ष्णतम खड्ग हाथ में लेकर वे भगवान् अपने अश्व पर चढ़कर इच्छानुसार अकेले चल पड़ेंगे । अथवा आवश्यकतानुसार सेना और अमोघ शस्त्रास्त्रों को स्वयं प्रकट कर लेंगे ।

महाप्रभु शूर्पकर्ण अपने तेज से समस्त पापों और पापियों को नष्ट करने में समर्थ होंगे। वे अपने परम तेज और सेना द्वारा म्लेच्छों के विनाश में शीघ्र ही सफल होंगे। जो लोग म्लेच्छों के समान आचरण करने वाले होंगे वे भी उन प्रभु के द्वारा संहार को प्राप्त होंगे। जब तक धर्म की स्थापना नहीं होगी, तब तक वे अपने नेत्रों से अग्नि-वर्षा ही करते रहेंगे।

वे सर्वात्मा एवं सर्वाधार भगवान् श्रीगणेश उस समय भय के कारण गिरि-गुहाओं और निविड़ वनों में छिपकर, जंगली कन्द-मूल, फलादि पर निर्वाह करने वाले, ब्राह्मणों का भय दूर कर उनका सत्कार कर सत्कर्म और श्रेष्ठ धर्मपालन के लिए प्रोत्साहित करेंगे।

इस प्रकार धर्माचरण का सम्पादन होने लगेगा और सतयुग का आरम्भ हो जायेगा।

❀❀❀

अष्टम खण्ड

१. प्रथम अध्याय

गणपति के आठ अवतार

श्री आदिदेव गणेशजी के चरित्रों को सुनकर अत्यन्त आनन्द में भरे शौनकजी बार-बार उन कथाओं का स्मरण करते-करते स्नेह-विह्वल होने लगे। कभी उन्हें रोमाञ्च होता तो कभी नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगते। तभी उनके कानों में सूतजी के अमृतोपम वचन सुनाई दिए। वे उनकी ओर देखकर मन्द-मन्द मुसकाते हुए कह रहे थे—'हे प्रभुभक्त शौनक! तुम धन्य हो जो भगवान् गणेश्वर के प्रेम में ऐसे सराबोर हो रहे हो। वत्स! गणाधीश के अनन्त चरित्र हैं, उन सभी का वर्णन किया जाना तो सम्भव नहीं है, फिर भी उनमें जो प्रमुख चरित्र थे वे मैंने तुम्हारे प्रति कह दिए हैं। तुम उन चरित्रों का गान करते ही सर्वाभीष्ट को प्राप्त हो जाओगे। क्योंकि प्रभु चरित्र के कीर्तन करने से इहलौकिक और पारलौकिक सभी सुखों की प्राप्ति सहज हो जाती है।'

'हे हरिप्रेमी शौनक! प्रभु चरित्र एवं नाम संकीर्तन में बड़ी शक्ति है। इसलिए उसकी बड़ी महिमा मानी जाती है। जहाँ परब्रह्म श्रीगणेश्वर का चरित्रगान किया जाता है वहाँ समस्त ऋद्धि-सिद्धियाँ निवास करती हैं। उस स्थान पर भूत-प्रेत, पिशाचादि तो कभी फटकते भी नहीं। आधि-व्याधि भी दूर से ही पलायन कर जाती है। समस्त संकट-विपत्तियों का सहज में ही निवारण हो जाता है। राजभय, शत्रुभय, ग्रहभय की भी आशंका नहीं रहती। जो लोग प्रभु की भक्ति चाहते हैं, उनको दृढ़ भक्ति की प्राप्ति होती है। मुमुक्षुओं को मोक्ष-प्राप्ति का भी यह परम साधन है।

शौनकजी ने सूतजी को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले—

'हे सूतजी ! हे भगवन् ! परात्पर ब्रह्म श्रीगणेश्वर के अनेक अवतार हुए बताये जाते हैं। उन सब अवतारों में भी प्रभु ने अनेक महाकर्म किये हैं। हे प्रभो ! मुझे उन अवतारों की कथा सुनाने की कृपा कीजिए, मेरे मन में उन सब चरित्रों के श्रवण की अत्यन्त उत्कण्ठा है।'

सूतजी बोले–'शौनक ! तुमने बड़ा सुन्दर प्रश्न किया है। तुम्हारे ऐसे प्रश्नों के द्वारा मैं भी अत्यन्त आनन्द प्राप्त करता हूँ। देखो वत्स ! विघ्न-विनाशक गणेशजी के अनन्त अवतार हुए हैं। उन सबका वर्णन किया जाना कदापि सम्भव नहीं है। क्योंकि सौ वर्षों में भी वे उपाख्यान पूर्ण नहीं हो सकते। तो भी उन सबमें आठ अवतार अधिक प्रमुख माने जाते हैं–१. वक्रतुण्ड, २. एकदन्त, ३. महोदर, ४. गजानन, ५. लम्बोदर, ६. विकट, ७. विघ्नराज और ८. धूम्रवर्ण। उन अवतारों की विशेषता एवं चरित्र निम्न प्रकार हैं :

१. वक्रतुण्डावतार

"वक्रतुण्डावतारश्च देहानां ब्रह्मधारकः।
मत्सरासुरहन्ता स सिंहवाहनः स्मृतः॥"

हे शौनक ! भगवान् गणेश्वर का 'वक्रतुण्ड' नामक अवतार देह ब्रह्म का धारक है। उसके द्वारा मत्सरासुर का संहार हुआ था। वे भगवान् सिंह पर आरूढ़ होने वाले कहे गये हैं।

एक समय की बात है कि देवराज इन्द्र के प्रमाद से एक भयंकर असुर की उत्पत्ति हुई और वह शीघ्र ही बढ़ता चला गया। मद से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम मत्सरासुर हुआ। वह असुर भयंकर और दुराधर्ष था। उसने सोचा–'मैं किस देवता की उपासना करूँ, जिससे मुझे संसार पर प्रभुत्व प्राप्त हो सके।' तभी उसे दैत्यगुरु शुक्राचार्य का ध्यान आया और वे परम विद्वान् गुरुदेव ही मुझे इस सबका निर्देश कर सकते हैं। ऐसा निश्चय कर वह उनकी शरण में पहुँचा।

मत्सरासुर ने उनसे निवेदन किया–'गुरुदेव ! मुझे वह उपाय बताने की कृपा कीजिए, जिससे मैं तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर सकूँ । हे मुनिनाथ ! आप समस्त विद्याओं के ज्ञाता, वेदादि में पारंगत तथा सर्व-समर्थ हैं । आपके लिए अविदित कुछ भी नहीं है ।'

शुक्राचार्य बोले–'वत्स ! सभी प्रकार के ऐश्वर्यों की प्राप्ति से तपश्चर्या होती है, इसलिए भगवान् त्रिलोचन की प्रसन्नता के लिए तप करो तो तुम्हें अभीष्ट की प्राप्ति हो सकती है ।' मत्सर ने कहा–'प्रभो ! मैं अवश्य ही तपश्चर्या करने को प्रस्तुत हूँ । आप मुझे विधि बताने की कृपा कीजिए ।'

दैत्यगुरु ने उपदेश दिया–'वत्स ! पवित्र जल में स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण कर, श्रद्धापूर्वक आशुतोष भगवान् शंकर की षोड़शोपचारों से पूजा करो । तदुपरान्त शिव के पंचाक्षरी मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' का जप करते हुए कठोर व्रत का संयमपूर्वक निर्वाह करो । तप के समाप्त होने पर तुम भगवान् शंकर की कृपा प्राप्त करोगे ।'

मत्सरासुर शिव का पञ्चाक्षरी मन्त्र पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और गुरु-चरणों में प्रणाम कर निर्जन वन में चला गया । वहाँ उसने शुक्राचार्य जी की बताई विधि से भगवान् शंकर का पूजन किया और पञ्चाक्षरी मन्त्र का जप करते हुए घोर तपश्चर्या करने लगा । वह हजारों वर्षों तक निराहार रहा, केवल जल ही पीता था । फिर जल भी छोड़कर वायु के सहारे ही जीवनचर्या चलाता रहा ।

उसकी कठिन तपस्या पर भगवान् शंकर प्रसन्न हुए और उन्होंने जगज्जननी पार्वती जी के सहित आकर उसे दर्शन दिया । उनके तेजोमय स्वरूप के समक्ष एक बार तो असुर के नेत्र मुँद गये, किन्तु भगवान् की अमृतमयी वाणी सुनकर उसने साहसपूर्वक नेत्र खोल दिये । देखा सामने सौम्य मूर्ति शिव-शिवा वृषभ पर सवार हुए खड़े हैं और कह रहे

हैं–'वत्स ! मैं तुम्हारे तप से सन्तुष्ट हूँ तुम जो अभीष्ट चाहो, वही मुझसे माँग लो ।'

असुर ने शिव-शिवा के चरणों में प्रणाम किया और फिर गद्‌गद कण्ठ से स्तुति करने लगा–'प्रभो ! आप समस्त देवताओं के अधीश्वर के स्वामी हैं । जगत् के सर्ग, पालन और विनाश के कारण भी आप ही हैं । आपकी इच्छा के बिना कहीं कोई भी कार्य नहीं होता । हे नाथ ! आप वाणी से अगोचर कहे जाते हैं, इसलिए आपकी किस प्रकार स्तुति करूँ यह मुझे ज्ञात नहीं है । हे नाथ ! मेरी जो अभिलाषा है वह आप सर्वज्ञ से छिपी नहीं है । फिर भी आपसे निवेदन करता हूँ कि मैं समस्त संसार पर अधिकार करने में समर्थ हो जाऊँ ।'

भगवान् शंकर 'ऐसा ही हो' कहकर अन्तर्धान हो गए । इधर वर पाकर प्रसन्न हुआ मत्सरासुर शुक्राचार्य जी के पास लौटा और उनसे वर प्राप्ति का समाचार सुनाया । तब उन्होंने उस दैत्य को दैत्यराज पद पर अभिषेक किया और बोले–'वत्स ! भगवान् शंकर का वर अमोघ है, वह कभी निष्फल नहीं हो सकता । तू अवश्य ही त्रैलोक्य विजयी और अधीश्वर बनेगा ।'

मत्सरासुर की त्रैलोक्य विजय

मत्सरासुर को शिव वर की प्राप्ति का समाचार शीघ्र ही फैल गया । इसलिए अनेक दैत्य उसकी कृपा प्राप्त करने के उद्‌देश्य से उसकी परिचर्या करने लगे । इस प्रकार धीरे-धीरे उसके पास दैत्यों का समुदाय दिन-पर-दिन बढ़ने लगा । एक दिन उसके साथियों ने उसे परामर्श दिया–'प्रभो ! आपको अपने राज्य का विस्तार करना चाहिए । इस समय आपके पास दैत्य-वीरों की पर्याप्त सेना एकत्र हो गई है । उसके बल पर आप सहज में ही अनेक राजाओं को हराकर उनके राज्य और वैभव पर अधिकार कर सकते हैं ।'

मत्सरासुर को उनका परामर्श उचित प्रतीत हुआ और तब उसने अपने वीरों को साथ लेकर सर्वप्रथम असुर, राक्षस और दैत्यों को ही वश में किया। इस प्रकार समस्त असुरादि ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। इससे उसका दल बढ़ता चला गया। तदुपरान्त उसने विशाल दैत्य सेना लेकर पृथ्वी पर राज्य करने वाले राजाओं पर एक-एक कर आक्रमण कर दिया। जो राजा दुर्बल थे उन्होंने बिना युद्ध के ही आत्मसमर्पण कर दिया, जिन्होंने युद्ध किया वे या तो हार गये या प्राण लेकर भागे। इस प्रकार समस्त पृथ्वी उसके अधिकार में आ गई।

फिर उस विजयोन्मत्त दैत्य ने नागलोक पर आक्रमण कर दिया। उस भयंकर युद्ध में असुर-सेना कम और नागसेना बहुत अधिक मारी गई। यह देखकर अधिक विनाश रोकने की दृष्टि से नागराज शेषजी ने विनयपूर्वक उसकी अधीनता स्वीकार कर ली।

जब धरती और पाताल दोनों पर विजय प्राप्त हो गई, तब उसका साहस और अधिक बढ़ गया और उसने देवताओं को अधीन करने के लिए अमरावती पर आक्रमण कर दिया। असुरों ने बलपूर्वक सुरपुर में प्रविष्ट होकर भाँति-भाँति के अत्याचार आरम्भ किए। यह देखकर वरुण के नेतृत्व में देवताओं ने असुरों का सामना किया। उस युद्ध में बहुत से देवता मारे गये और बहुत से आहत हुए और जो शेष बचे वे भाग गये।

वरुण के हारने पर यम और कुबेर ने रणक्षेत्र में पहुँचकर दैत्यों को रोका। भीषण युद्ध के पश्चात् उन्हें भी पराजय का मुख देखना पड़ा। उनकी सेना की भी वही दशा हुई, जो वरुण के नेतृत्व वाली सेना की हुई थी।

अब देवराज इन्द्र स्वयं गजराज ऐरावत पर आरूढ़ होकर अपनी विशाल देवसेना के साथ दैत्यसेना से युद्ध करने के लिए आए। पहिले तो ऐसा लगा, जैसे दैत्य-सेना उनके समक्ष हार रही है। किन्तु बाद में दैत्यों

के घोर आक्रमण के समक्ष उनके पाँव न टिक सके और अन्त में उनकी पराजय हुई ।

देवगण स्वर्गलोक को छोड़कर भाग निकले । मत्सरासुर ने अमरावती पर अधिकार कर लिया और अपने एक विश्वासपात्र दैत्य अधिकारी को वहाँ का प्रशासक नियुक्त करके अपनी राजधानी को लौट आया । इस प्रकार वह तीनों लोकों का अधीश्वर बन गया ।

उधर देवराज इन्द्र अपने राज्य से हीन होकर ब्रह्माजी के पास पहुँचे और उनसे निवेदन किया–'ब्रह्मन् ! मत्सरासुर ने स्वर्ग पर भी अधिकार कर लिया है । सभी देवता अपने घर-द्वार से वञ्चित होकर उस दैत्य के भय से मारे-मारे फिर रहे हैं । इसलिए हे प्रभो ! आप उसके वध का कुछ उपाय कीजिए ।'

ब्रह्माजी बोले–'देवराज ! इसका उपाय तो बैकुण्ठनाथ से पूछना चाहिए । क्योंकि वे ही प्रभु असुरों के संहार में पूर्ण समर्थ हैं । इस बार भी वे सहायता करेंगे । चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ ।'

इन्द्रादि देवताओं के साथ ब्रह्माजी बैकुण्ठधाम में पहुँचे और रमानाथ को मत्सरासुर की प्रबलता और उसके द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों की बात उन्हें सुनाई । लक्ष्मीकान्त ने समस्त विवरण जानने के पश्चात् कहा–'इसका उपाय तो उन्हीं भोलानाथ से पूछो, जिन्होंने असुर को अपने बल से इतना प्रबल और दुराधर्ष बना दिया है । वे और आप दोनों ही बिना समझे-सोचे तुरन्त वर दे डालते हैं और उसका परिणाम भोगना पड़ता है समस्त संसार को । चतुरानन ! चलो, कैलास पर्वत पर पहुँचकर ही इस विषय पर विस्तार से विचार करेंगे ।'

सब लोग कैलास पहुँचे । उस समय भगवान् शंकर गिरिराजनन्दिनी के साथ एक रत्नसिंहासन पर विराजमान थे । उनके गण उन्हें घेरे हुए बैठे थे । विष्णु, ब्रह्मा आदि देवताओं को आये देखकर शिवजी ने उठकर

उनका स्वागत किया और सभी को यथायोग्य स्थानों पर बैठाकर स्वयं भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी के निकट जा बैठे ।

विष्णु ने उनसे कहा–'आशुतोष ! आपने मत्सरासुर को ऐसा अमोघ वर दे डाला है कि वह विजयोन्मत्त हुआ भाँति-भाँति के अत्याचार कर रहा है । उसने तीनों लोकों पर अधिकार कर लिया है, इससे समस्त संसार त्रस्त हो उठा है । अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे असुर का अन्त हो सके ।'

शंकर बोले–'त्रिलोकीनाथ ! आप समस्त उपायों के आश्रय है । आपकी ही इच्छा से इस संसार की सभी क्रियाएँ होती हैं। उन सब क्रियाओं के चलते रहने के लिए ही आपने कालचक्र निर्माण किया है । विश्व में होने वाले उत्थान-पतन का कारण भी एकमात्र आप ही हैं । अब आपके द्वारा नियुक्त वह काल उस असुर के अन्त का कारण बनेगा तभी तो उसका संहार हो सकेगा । प्रभो ! हे दीनबन्धो ! मेरी मति के अनुसार तो हमें उसका पतन देखने के लिए काल की प्रतीक्षा करनी चाहिए ।'

इस प्रकार सभी कुछ काल की निर्भरता पर टल गया । परन्तु मत्सरासुर के गुप्तचर सर्वत्र नियुक्त थे । उन्होंने असुर को कैलास पर होने वाले गोपनीय वार्तालाप का समाचार दे दिया । इससे वह अत्यन्त कुपित होकर लाल-लाल लोचन निकालता हुआ बोला, 'दैत्यवीरो ! अपनी वाहिनी तैयार कर कैलास पर चढ़ चलो और उस भंगड़ी को बन्दी बना लो । चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ ।'

और अपनी विशाल असुरसेना के सहित उसने कैलास पर आक्रमण कर दिया । शिवगणों और प्रमथगणों ने उनका सामना किया, किन्तु वे असुर को आगे बढ़ने से न रोक सके । अन्त में भवानीपति से वर प्राप्त मत्सरासुर ने भवानीपति को ही पाश में बाँध लिया और अपने ज्येष्ठ पुत्र को वहाँ पर शासन-भार सौंप दिया ।

अब उसने बैकुण्ठ पर भी चढ़ाई कर दी । लक्ष्मीनाथ तो उसके वर-प्रबल होने से परिचित ही थे । अतः वहीं अन्तर्धान हो गए । असुर को बिना युद्ध किए ही वहाँ का आधिपत्य प्राप्त हो गया । अपने एक पुत्र को उसने वहाँ का शासनाधिकारी बनाया ।

इसी प्रकार ब्रह्मलोक पर भी अधिकार कर लिया । वहाँ भी अन्य पुत्र को नियुक्त कर दिया । स्वयं अपनी राजधानी में रहते हुए ही वह तीनों लोकों पर निर्बाध रूप से शासन करने लगा । इस प्रकार उसके अत्याचार का ताण्डव चलता रहा ।

इधर एक गोपनीय स्थान में समस्त देवगण एकत्र हुए और मत्सरासुर के मारने के विषय में विचार करने लगे । उसी समय भगवान् दत्तात्रेय भ्रमण करते हुए आ पहुँचे । उनसे देवताओं ने निवेदन किया—'प्रभो ! हम सब मत्सरासुर के अत्याचारों से अत्यन्त त्रस्त हो रहे हैं । उसके संहार का कोई अमोघ उपाय बताने की कृपा कीजिए ।'

देवताओं को 'ग' मन्त्र-जप का उपदेश

दत्तात्रेय बोले—'देवताओ ! परब्रह्म परमेश्वर ही उसे मारने में समर्थ हैं । वे ही प्रभु सब प्राणियों के दुःखों को दूर करने में समर्थ हैं । तुम उनके वक्रतुण्ड स्वरूप का ध्यान करते हुए एकाक्षरी मन्त्र 'गं' मन्त्र के जपानुष्ठान करो । वे भगवान् तुम्हें अवश्य ही इस घोर संकट से छुड़ा देंगे ।'

देवताओं ने भगवान् दत्तात्रेय से वक्रतुण्ड की उपासना और उनके 'गं' मन्त्र के जपानुष्ठान की विधि सीखी और फिर उनके द्वारा उपदिष्ट विधान से अनुष्ठान करने लगे । उनकी कठिन आराधना से भगवान् वक्रतुण्ड ने सन्तुष्ट होकर दर्शन दिए । उनके अद्वितीय तेज के कारण सभी के नेत्र मुँदे जा रहे थे । तभी भगवान् वक्रतुण्ड ने कहा—'देवगण ! मैं प्रसन्न हूँ । जो अभीष्ट हो वह वर माँगो ।'

देवताओं ने उनके पद्मों में प्रणाम करके हाथ जोड़ते हुए निवेदन किया—'प्रभो ! हम सब मत्सरासुर के भय से सर्वत्र मारे-मारे फिर रहे हैं। उससे निस्तार का कोई उपाय नहीं सूझता । कृपा कर हमें संकट से मुक्त कीजिए ।'

वक्रतुण्ड बोले—'देवताओ ! तुम चिन्ता का त्याग करो । मैं मत्सरासुर का समस्त गर्व खण्डित कर दूँगा ।' यह कहकर उन्होंने गणों का स्मरण किया, जिससे असंख्य गण प्रकट हो गए । उस समस्त सेना को और देवताओं को साथ लेकर वे प्रभु मत्सरासुर की राजधानी पर जा पहुँचे ।

असुरों ने दौड़कर मत्सरासुर को सूचित किया—'राजन् ! असंख्य वीरों ने आकर आपकी राजधानी को घेर लिया है और वे शीघ्र ही नगर में प्रवेश करना चाहते हैं। इसका शीघ्र ही प्रतिकार कीजिए अन्यथा बाद में स्थिति पर नियन्त्रण असम्भव होगा ।'

मत्सरासुर ने सेनापति को बुलाकर आदेश दिया—'शत्रुओं को मार डालो । उनका जो अधीश्वर हो उसे बन्दी बनाकर मेरे समक्ष उपस्थित करो अथवा उसका वध कर दो ।'

सेनापति ने 'जो आज्ञा' कहकर सिर झुकाया और विशाल असुर-वाहिनी के साथ नग के बाहर आकर वक्रतुण्ड के गणों को ललकारता हुआ बोला—'मूर्खो ! प्राणों का भय नहीं लगता तुम्हें जो यहाँ मरने के लिए चले आये हो । जिन महाराज मत्सरासुर की सेना के भय से ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी अपने असंख्य सेवकों के सहित भागे-भागे फिरते हैं तो तुम्हारी क्या गणना है ? इसलिए तुरन्त ही अपने-अपने प्राण लेकर भाग जाओ ।'

तभी समस्त गणों ने एक साथ मिलकर 'वक्रतुण्ड' का जयघोष किया और दैत्य-सेना पर प्रहार करने लगे । भयंकर युद्ध छिड़ गया, किन्तु असुरसेना हारने लगी । बहुत से दैत्य रथी, महारथी, गजारूढ़,

अश्वारूढ़ प्रमुख वीर मारे गये । यह देखकर दैत्यसेना भागने लगी । सेनापति के बहुत कहने पर रणक्षेत्र में कोई दैत्यवीर न टिका ।

यह संवाद जैसे ही त्रैलोक्य विजेता मत्सरासुर के पास पहुँचा कि वह आग-बबूला हो उठा । उसने कहा, 'शत्रुओं का यह साहस ! मेरे ही नगर पर आकर मेरी सेना को परास्त कर दें । वीरो ! अब विलम्ब का काम नहीं, जैसे भी हो शत्रु को नष्ट करना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है । चाहे हमारे प्राण चले जायें, किन्तु शत्रु को आगे नहीं बढ़ने देंगे । उसे भगाकर छोड़ेंगे ।'

अमात्यों ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—'प्रभो ! हमारे वीरों ने शत्रु-सेना में एक भयंकर रूप वाला योद्धा देखा है । वह अपनी समस्त सेना का सञ्चालन कर रहा है । वह बड़ा दुराधर्ष वीर है, जिधर बढ़ जाता है, उधर ही सब कुछ शून्य हो जाता है । इसलिए राजन् ! हमारे विचार में तो उससे सन्धि कर लेनी चाहिए । क्योंकि बुद्धिमानी इसी में है कि अवसर देखकर कार्य किया जाये ।'

उनकी बात सुनकर दैत्यराज लाल-पीला पड़ गया और क्रोध से आँखें निकालकर बोला—'कायरपुरुषो ! तुम मुझे शत्रु के सामने झुकने का परामर्श दे रहे हो ? इससे तो युद्ध में मर मिटना ही श्रेयस्कर है ।'

फिर उसने प्रधान सेनाध्यक्ष को आदेश दिया—'शत्रु का सामना करने के लिए विशाल सेना लेकर आगे बढ़ो । मैं भी तैयार होकर आ रहा हूँ । यह घोषणा कर दो कि रणभूमि में मैदान छोड़कर कोई भी न हटे, अन्यथा उसे मृत्यु-दण्ड दिया जायेगा ।'

प्रधान सेनाध्यक्ष ने समस्त सेनाओं को तैयार होने का आदेश दिया और उक्त राजाज्ञा भी सुना दी । मत्सरासुर स्वयं उस असंख्य दल के साथ राजधानी से बाहर निकला । उसके सुन्दर 'प्रिय और विषयप्रिय' नामक दो पुत्र भी साथ थे । जिन्होंने सुनियोजित ढंग से वक्रतुण्ड के गणों पर भीषण आक्रमण कर दिया था ।

गणों और असुरों के मध्य इतना भयानक युद्ध हुआ कि दोनों पक्षों को भारी क्षति उठानी पड़ी। किन्तु विजय या पराजय किसी की भी न हुई। इस प्रकार युद्ध चलते हुए पाँच दिन हो गए थे। इसी बीच भवानीपति को मत्सरासुर के पुत्रों ने प्रहार द्वारा मूर्च्छित कर दिया। फिर भी वक्रतुण्ड के दो गण आगे बढ़े और उन असुरों से भिड़ गए। उनके प्रहार से वे दोनों असुर मारे गए।

अपने पुत्रों का मरण हुआ देखकर मत्सरासुर व्याकुल हो उठा और वह युद्धस्थल छोड़कर चला गया। राजभवन में भी उसके कारण शोक व्याप्त हो गया, तब अमात्यों ने उसे समझाया—'राजन्! शोक करने से तो कुछ होगा नहीं, आपके मरे हुए पुत्र शोक से लौट नहीं सकते। अब तो शोक का एक ही प्रतिकार है—शत्रुओं से प्रतिशोध लेना।'

मत्सरासुर का गणेशजी की शरण में जाना

मत्सरासुर पुनः रणभूमि में पहुँचा। उसने वक्रतुण्ड का सामना करते हुए कहा—'मूर्ख! यहाँ मरने के लिए क्यों आ गया? क्या तू मेरी शक्ति से परिचित नहीं?'

वक्रतुण्ड ने हँसते हुए उत्तर दिया—'दुष्ट राक्षस! मैं यहाँ मरने के लिए नहीं, तुझे मारने के लिए आया हूँ। तेरी शक्ति से भी भली प्रकार परिचित हूँ। तू उन्हीं के वर से अत्यन्त प्रबल हो गया था, जिन्हें तूने पाश में बाँध लिया था। परन्तु अब तेरा ह्रास-काल आ गया है। इसलिए निश्चय मारा जायेगा। फिर भी यदि तुझे प्राण अधिक प्यारा है तो मेरी शरण में आ जा।'

मत्सरासुर ने देखा कि वस्तुतः वक्रतुण्ड अत्यन्त प्रबल हैं, जिनका सामना करने से मरण होना सम्भव है, तो वह उनके प्रस्ताव पर विचार

करने लगा और अमात्यों से परामर्श किया कि 'ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए ?'

अमात्यों ने कहा–'महाराज ! वक्रतुण्ड ने आपको शरण देने का प्रस्ताव कर अपनी उदारता का परिचय दिया है । इसलिए प्रभो ! उनकी शरण लेना ही अधिक कल्याणकारी होगा ।'

असुर का भी यही विचार था इसलिए वह शीघ्र ही वक्रतुण्ड की शरण में जाकर उनकी स्तुति करने लगा–'प्रभो ! मैं आपके पराक्रम से पहले अनजान था । अब मुझे ज्ञात हो गया है कि आप कोई साधारण देवता नहीं वरन् सर्वसमर्थ परात्पर ब्रह्म हैं । हे नाथ ! मुझ अज्ञानी के अपराध को क्षमा करके अपनी शरण में स्थान दीजिए और साथ ही अपनी सुदृढ़ भक्ति भी ।'

यह कहकर उसने वक्रतुण्ड के चरण पकड़ लिये । इससे वे भगवान् सन्तुष्ट होकर बोले–'असुरराज ! मैं तुझपर प्रसन्न हूँ । अब तू निर्भय होकर अपना राज्य-कार्य कर, किन्तु विस्तार-लिप्सा को त्याग दे । देवताओं, नागों आदि के स्थान इन्हें लौटा दे और जितने स्थान में रह सके, उतना ही सीमा से रहता हुआ सदैव मेरी भक्ति में लगा रह । अपने अनुयायियों को आदेश दे कि वे निरीह प्राणियों पर किसी भी प्रकार का अत्याचार न करें ।'

मत्सरासुर ने तुरन्त स्वीकार किया कि वैसा ही किया जायेगा । इससे सभी देवगण आनन्द मग्न हो गये और उन्होंने भक्तिभाव से वक्रतुण्ड की स्तुति की । उन्होंने देवताओं को भी अभय प्रदान किया और तुरन्त ही अन्तर्धान हो गये ।

असुर दम्भ की उत्पत्ति

सूतजी बोले–'हे शौनक ! उन दयामय भगवान् वक्रतुण्ड ने मत्सरासुर

को क्षमा कर दिया और उसे अपना भक्त बना लिया । इस प्रकार का एक अन्य उपाख्यान दम्भासुर का है, उसे भी भगवान् वक्रतुण्ड ने क्षमा दान दिया था ।'

शौनक जी बोले–'हे सूतजी ! हे प्रभो ! मुझे दम्भासुर का उपाख्यान भी सुनाने की कृपा कीजिए । हे दयालु ! मुझे गणेश्वर के विभिन्न चरित्रों के श्रवण में बड़ा आनन्द आ रहा है ।'

सूतजी बोले–'शौनक ! वह उपाख्यान सर्गारम्भ काल का है । जब ब्रह्माजी ने सृष्टि-रचना का कार्य आरम्भ किया, तब उसमें उन्हें अनेक विघ्नों का सामना करना पड़ा । तब लोकपितामह ने सोचा–'इन विघ्नों का निवारण वे वक्रतुण्ड गणाधिपति ही कर सकते हैं । इसलिए उन्हीं प्रभु को प्रसन्न करना चाहिए ।'

ऐसा निश्चय कर उन्होंने गणेश्वर का भक्तिभाव से पूजन आरम्भ कर उनके षडक्षरी मन्त्र 'वक्रतुण्डाय हुम्' का जपानुष्ठान आरम्भ किया और अनुष्ठान की समाप्ति कर विधिपूर्वक ब्राह्मण भोजन कराया एवं दक्षिणा आदि प्रदान की ।

ब्रह्माजी के अनुष्ठान से प्रसन्न हुए वक्रतुण्ड भगवान् ने प्रकट होकर कहा–'चतुरानन ! मैं प्रसन्न हूँ । अपना अभीष्ट वर माँग लो ।' ब्रह्माजी ने निवेदन किया–'प्रभो ! सृष्टिकार्य में उपस्थित विघ्नों को दूर कर दीजिए, यही मेरा अभीष्ट है ।' वक्रतुण्ड 'तथास्तु' कहकर अन्तर्हित हो गये ।

तदुपरान्त लोकपितामह ने निर्विघ्न रूप से सृष्टि-कार्य सम्पन्न किया, किन्तु उस समय पितामह के कम्प से दम्भ नामक एक विकराल शिशु उत्पन्न हुआ, जो शीघ्र ही बड़ा हो गया । उसने अपने उत्कर्ष के लिए घोर तपश्चर्या आरम्भ की । उस कठोर तप को देखकर लोकस्रष्टा बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने उसे दर्शन देकर कहा–'वत्स ! वर माँगो ।'

तपस्वी दम्भ ने उन्हें प्रणाम किया और बोला–'प्रभो! मैं त्रैलोक्य विजयी बनूँ और सदैव निर्भय रहूँ। मेरा तिरस्कार कोई भी सांसारिक प्राणी या देवता, दैत्य, नागादि न कर सके।'

पितामह ने कहा–'वत्स! तेरी कामना अवश्य पूरी होगी।' तब दम्भासुर शुक्राचार्य के पास गया, जिन्होंने उसे दैत्येश्वर के पद पर अभिषिक्त कर दिया।

अब दम्भासुर ने एक अत्यन्त सुन्दर नगर बनवाया और उसी नगर में रहने लगा। वह नगर चारों ओर सुदृढ़ प्राकार और खाई आदि के द्वारा सुदृढ़ था। वहीं उसने दैत्यों को बुला-बुलाकर उनकी सेना एकत्र करना आरम्भ किया।

उसने भी अपने राज्य-विस्तार की नीति अपनाई और मत्सरासुर के ही समान प्रथम वसुन्धरा, फिर पाताल और उपरान्त स्वर्ग पर विजय प्राप्त कर ली और जीते हुए विभिन्न स्थानों पर अपने अधिकारी नियुक्त कर दिए। इसके पश्चात् बैकुण्ठ और कैलास पर भी अधिकार कर लिया।

देवताओं पर पूर्ववत् ही विपत्तियों का पर्वत टूट पड़ा। वे अत्यन्त दुःखित होकर गिरि-खोहों और निर्जन वनों में छिपकर रहते हुए अपनी प्राण-रक्षा करने लगे। एक दिन उन्होंने विचार किया कि 'लोकपितामह ब्रह्माजी के पास चलकर विपत्ति से मुक्त होने का उपाय पूछना चाहिए।'

उन्होंने ब्रह्माजी के पास जाकर कहा–'प्रभो! दम्भासुर आपके वर के कारण अत्यन्त प्रबल हो उठा है और अनेक प्रकार के अत्याचार कर रहा है। उससे हमारी रक्षा कीजिए।'

ब्रह्माजी बोले–'देवताओ! इस संकट से छुटकारा पाने के लिए हमें भगवान् वक्रतुण्ड की उपासना करनी चाहिए। तुम्हारे साथ मैं भी उनके एकाक्षरी मन्त्र का जप आरम्भ कर रहा हूँ।'

यह कहकर देवताओं के साथ लोकपितामह ने भगवान् वक्रतुण्ड का

पूजन कर उनके मन्त्र का जप किया । अनुष्ठान पूर्ण होने पर वक्रतुण्ड ने प्रकट होकर कहा–'चतुरानन ! मैं प्रसन्न हूँ। आप अपना अभीष्ट वर माँग लीजिए ।'

ब्रह्माजी बोले–'हे प्रभो ! आप समस्त दुःख-दारिद्रों को दूर करने में समर्थ हैं। दुष्ट दम्भासुर हमें अत्यन्त पीड़ित कर रहा है, अतएव हमें उसके भय से मुक्त कीजिए ।'

वरदेव वक्रतुण्ड ने अभय प्रदान किया–'कमलासन ! मैं दम्भासुर की पराजय कर दूँगा । समस्त देव-समाज भय को त्यागकर निश्चिन्त हो जाये। देवराज के द्वारा दम्भासुर को सन्देश भेज दो कि या तो वह मेरी शरण में आ जाय, अन्यथा मैं उसका विनाश कर दूँगा ।'

आज्ञा पाकर इन्द्र दूत रूप में दम्भासुर के पास जाकर बोले–'असुरराज ! मुझे महाप्रभु वक्रतुण्ड ने यहाँ भेजा है । तुम देवताओं को और समस्त अधीनस्थ राज्यों को स्वतन्त्र कर दो और परम प्रभु की शरण में जाओ अन्यथा तुम्हारा विनाश सन्निध है ।'

दम्भासुर ने क्रोधपूर्वक कहा–'अपने प्रभु से कह दो कि उसका और उसके साथियों का अहंकार नष्ट करने में मैं पूर्ण समर्थ हूँ । यदि प्राण-रक्षा चाहते हो तो मेरी शरण में आ जाओ ।'

इन्द्र ने लौटकर वक्रतुण्ड की सेवा में उपस्थित होकर दम्भासुर की दम्भोक्ति से उन्हें अवगत किया, जिसे सुनकर उन्होंने गणों का स्मरण किया और देवताओं को भी सुसज्जित होकर आगे बढ़ने का आदेश दिया।

उधर दम्भासुर दैत्यगुरु शुक्राचार्य के पास पहुँचा और उन्हें प्रणाम कर बोला–'प्रभो ! वक्रतुण्ड के दूत रूप से इन्द्र ने आकर कहा है कि या तो वक्रतुण्ड की शरण में जाओ, अन्यथा वे तुम्हारा संहार कर देंगे। तो वक्रतुण्ड कौन है ? क्या स्थिति है उसकी ? क्या उसमें इतनी शक्ति

है कि वह हमारा सामना कर सके ?'

शुक्राचार्य बोले–'राजन् ! भगवान् वक्रतुण्ड अमित महिमामय और अभूतपूर्व पराक्रमी हैं । वे गणाध्यक्ष साक्षात् परात्पर ब्रह्म के ही अवतार हैं । यदि तुम दम्भ का त्याग करके उनकी शरण में जाओ तो निश्चय ही तुम्हारा कल्याण होगा । फिर तुम्हें किसी प्रकार का भय रह ही नहीं सकता ।'

यह सुनकर दम्भासुर ने व्यर्थ के दम्भ का त्याग कर दिया और अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनकी शरण में जाने का निश्चय किया । उसका विचार जानकर अनेक दैत्यों ने विरोध प्रकट किया, किन्तु दम्भासुर ने उनकी बात नहीं मानी और वह तुरन्त ही उनकी शरण में जा पहुँचा ।

दैत्यराज को अपने चरणों में पड़ा देखकर वक्रतुण्ड भगवान् ने उसे अभय और अपनी भक्ति प्रदान की और क्षमा दान देकर दम्भासुर ने सब राजाओं के राज्य लौटा दिए तथा कैलास, बैकुण्ठ एवं स्वर्गादि देवधामों को स्वतन्त्र कर दिया । अब उसका शासन धर्म और न्याय-नीति से सम्पन्न हो गया था ।

❀❀❀

२. द्वितीय अध्याय

२. एकदन्त अवतार

सूतजी बोले–'हे शौनक ! अब भगवान् गणेश्वर का एकदन्तावतार का उपाख्यान तुम्हें सुनाता हूँ –

"एकदन्तावतारो वै देहिनां ब्रह्मधारकः ।
मदासुरस्य हन्ता स आखुवाहनगः स्मृतः ॥"

'एकदन्त' संज्ञक अवतार देही ब्रह्म को धारण करने वाला और मदासुर का संहारक है । हे शौनक ! उसका वाहन मूषक कहा जाता है ।

एक बार महर्षि च्यवन के प्रमाद से मद नामक असुर की उत्पत्ति हो गई । उस असुर ने अपने जन्मदाता महर्षि के चरणों में प्रणाम कर पूछा—'प्रभो ! मैं कहाँ रहूँ ? क्या करूँ ?'

महर्षि बोले—'वत्स ! तू पाताल-लोक में शुक्राचार्य के पास जा । वे दैत्यगुरु तेरी सम्पूर्ण व्यवस्था करेंगे । उनसे कहना कि महर्षि च्यवन ने मुझे आपकी सेवा में भेजा है ।'

मदासुर पाताल में पहुँचकर शुक्राचार्य की सेवा में उपस्थित हुआ और प्रणाम कर बोला—'प्रभो ! मैं आपके भाई महर्षि च्यवन का पुत्र हूँ, इस कारण आपके भी पुत्र के समान हूँ । उन्होंने मेरा नाम मदासुर रखा है और आपका शिष्य बनने के लिए मुझे भेजा है । हे नाथ ! मैं समस्त ब्रह्माण्ड के राज्य की कामना करता हूँ । आप मेरा अभीष्ट प्राप्त कराने का कष्ट करें ।'

शुक्राचार्य बोले—'वत्स ! मैं तुम्हारा अभीष्ट पूर्ण कराऊँगा । तुम इस एकाक्षरी शक्ति मन्त्र 'ह्रीं' का अनुष्ठान करो । यह कह उन्होंने अनुष्ठान की विधि बताई और मदासुर उन्हें प्रणाम करके घोर अरण्य में तप करने के लिए चला गया ।

मदासुर ने वहाँ शक्ति का ध्यान और जप करते हुए घोर तपस्या की तथा हजारों वर्षों पर्यन्त निराहार और निर्जल रहा । इससे उसका शरीर अस्थियों का अवशेष मात्र और बल्मीक से आवृत हो गया । यहाँ तक कि उसके शरीर के चारों ओर वृक्ष एवं लताएँ उत्पन्न हो गईं । अन्त में सिंहवाहिनी भगवती ने प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिया तथा वह माता के

दर्शन करते ही प्रसन्न होता हुआ विह्वल हृदय से उनके चरण-कमलों में गिर पड़ा ।

तदुपरान्त उसने भाव-विभोर होकर माता की स्तुति की—'हे जगज्जननि ! आप ही इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने वाली हैं । आप सर्वसमर्था को भक्तों के लिए कुछ भी अदेय नहीं है । माता ! आपके दर्शन करके मैं धन्य हो गया हूँ । आप मुझपर कृपा कीजिए ।'

भगवती ने वर प्रदान किया—'वत्स ! तू ब्रह्माण्ड का स्थिर एवं निष्कंटक राज्य प्राप्त करेगा । तुझे कभी रोग नहीं सतायेगा और समय-समय पर तेरी इच्छाएँ पूर्ण होती रहेंगी ।'

वर देकर देवी अन्तर्धान हो गईं । मदासुर भी प्रसन्न मन से अपने स्थान पर लौटा तथा वहाँ जो नगर था उसे अपने अधिकार में करके उसे अत्यन्त वैभवशाली बनाया । फिर उसने प्रमदासुर की अत्यन्त सुन्दरी 'लालसा' नाम की कन्या से विवाह किया ।

उसकी वीरता और वैभव की बात सर्वत्र फैलने लगी । दूर-दूर के बड़े-बड़े पराक्रमी असुर उससे मित्रता करने लगे । बहुत से दैत्य तो वहाँ आकर ही बस गये । फिर मदासुर दैत्यगुरु शुक्राचार्य को प्रार्थनापूर्वक वहाँ ले गया और उन्हें अपना राजपुरोहित बनाकर रखा । शुक्राचार्य ने उसका दैत्यराज के पद पर अभिषेक कर दिया ।

मदासुर द्वारा दिग्विजय करना

इस प्रकार मदासुर की शक्ति बढ़ने लगी । उसके राज्य में दैत्यों की बहुलता थी, इसलिए धर्म-कर्म का अभाव हो गया । उसके तीन पुत्र भी बड़े वीर प्रतापी हुए जिनके नाम विलासी, लोलुप और धनप्रिय थे ।

अब उसने अपने राज्य का विस्तार आरम्भ किया सर्वप्रथम समस्त पृथ्वी को अधिकार में करने के लिए उसने राजाओं से युद्ध किया । अनेक

राजा उससे युद्ध कर मारे गए और अनेकों ने भयभीत होकर बिना युद्ध के ही उसकी अधीनता स्वीकार कर ली । जो स्वाभिमानी थे, वे राज्य छोड़कर चले गए । इस प्रकार पृथ्वी पर उसका पूर्ण साम्राज्य स्थापित हो गया ।

अब उसने स्वर्गलोक पर आक्रमण किया । देवराज इन्द्र ने अपनी विशाल सेना के साथ उसे बाहर ही रोकने की चेष्टा की, किन्तु असुर भगवती के बल से प्रबल हो चुका था, इसलिए उसका तिरस्कार न किया जा सका । फलस्वरूप देवताओं की पराजय हुई । इन्द्र अपना राज्य छोड़कर भाग गये । स्वर्ग पर मदासुर का पूर्ण अधिकार हो गया ।

इसके पश्चात् उसने सोचा–'कैलास का वह परम योगी कहलाने वाला अद्‌भुत ही देवताओं का पक्षपाती है, इसलिए उसे भी वश में करना आवश्यक है ।' ऐसा निश्चय कर उसने अपनी विशाल वाहिनी के साथ आक्रमण कर दिया । शिवगण उसका सामना करने में विफल रहे । शूलपाणि त्रिलोचन का वश न चला तो वे भाग खड़े हुए ।

अतएव कैलास को भी मदासुर ने शीघ्र ही अपने अधिकार में कर लिया ।

इस प्रकार तीनों लोक तो उसके अधीन हो रहे थे । यह विशिष्ट दिव्य लोक भी उसके शासनाधिकार में आ गये । अब समूचे ब्रह्माण्ड पर मदासुर का शासन हो गया । सर्वत्र अत्याचार, अनाचार का बोलबाला था । धरती पर स्वाहा, स्वधा, वषट्‌कार आदि का लोप हो गया । ईश्वर-पूजा निषिद्ध कर दी गई । वेदोक्त धर्म का कहीं पता न था । केवल मदासुर द्वारा निर्मित धर्म ही वैध एवं मान्य थे । उनसे भिन्न धर्म का पालन करने वालों को अधिकतम दण्ड दिया जाता था ।

उसके उत्पीड़न से घर त्यागकर भागे हुए देवगण वन-पर्वतों को मारे-मारे फिर रहे थे । उन्हें उस विपत्ति से बचने का कोई उपाय समझ में नहीं आता था । एक दिन वे महर्षि सनत्कुमार के पास पहुँचे और

प्रणाम कर निवेदन किया–'प्रभो ! मदासुर के अत्याचारों से संसार त्रस्त हो रहा है । उसने स्वर्ग पर भी अधिकार कर लिया है । हम सब उसके भय से वन-पार्वतों में छिपे-छिपे फिर रहे हैं, हे मुनिनाथ ! हमपर दया करके वह उपाय बताइये जिससे राक्षसों का संहार हो सके ।'

सनत्कुमार बोले–'देवताओ ! यदि तुम भगवान् एकदन्त की उपासना करके उन्हें प्रसन्न कर लो तो निश्चय ही तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हो सकता है । वे भगवान् परम दयालु और सर्वशक्तिमान् हैं ।'

देवताओं ने निवेदन किया–'प्रभो ! उन भगवान् की प्रसन्नता का साधन क्या है ? उनके रूप, मन्त्र, ध्यानादि के विषय में हमें पूर्ण रूप से बताने की कृपा कीजिए ।'

महर्षि ने कहा–'देवगण भगवान् एकदन्त परात्पर ब्रह्म गणेश्वर ही हैं, जो समस्त संसार के सर्ग, पालन और जय के एकमात्र कारण हैं । उनका एकाक्षरी मन्त्र 'गं' है, जिसका जप करना चाहिए । उनका एकदन्त नाम दो विशेषताओं से युक्त है, क्योंकि वह एक और दन्त दो पदों से बना है । 'एक' शब्द माया सूचक है । वह माया देह रूपिणी और विलासवती है तथा 'दन्त' शब्द सत्तास्वरूप होने से परमात्मा का सूचक है । वस्तुतः गणेशजी माया के धारक और स्वयं सत्तामात्र से स्थित रहते हैं । इसलिए वेदवादी विद्वज्जन उन परमात्मा स्वरूप को 'एकदन्त' कहते हैं ।'

'देवताओ ! उन परात्पर ब्रह्म का 'एकदन्त' नाम का अर्थ हुआ अब उनके ध्यान का प्रकार सुनो–

"एकदन्तं चतुर्बाहुं गजवक्त्रं महोदरम् ।
सिद्धि-बुद्धि-समायुक्तं मूषकारूढमेव व ॥
नाभिशेषं पाशहस्तं परशुं कमलं शुभम् ।
अभयं दधतं चैव प्रसन्नवदनाम्बुजम् ।
भक्तेभ्यो वरदं नित्यमभक्तानां निषूदनम् ॥"

'उस गणेश्वर के एक दाँत, चार बाहुएँ हैं, मुख हाथी के समान और बड़ा है। वे सदैव सिद्धि-बुद्धि से सम्पन्न और मूषक की स्वारी करने वाले हैं। उनकी नाभि में शेषनाग और हाथों में पाश, परशु, सुन्दर कमल और अभय मुद्रा सुशोभित हैं। उनका मुख-कमल सदैव प्रसन्नता से खिला हुआ रहता है। वे भक्तों को सदा वर प्रदान करने वाले और अभक्तों का विनाश करने वाले हैं।'

इस प्रकार महर्षि देवताओं को उपदेश देकर मौन हो गये। तब देवगण एकान्त वन-प्रान्त में जाकर भगवान् एकदन्त की उपासना करने लगे। इस प्रकार तपस्या करते-करते उन्हें सौ दिव्य वर्ष व्यतीत हो गए। भूखे-प्यासे रहने के कारण उनके शरीर सूखकर अस्थि-पंजर मात्र रह गये थे। उनकी यह दशा एवं घोर तपश्चर्या देखकर भगवान् प्रसन्न हो गए। उन्होंने दर्शन देकर कहा, 'देवताओ ! वर माँगो।'

भगवान् को अपने समक्ष साक्षात् प्रकट हुए देखकर अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और अनेक प्रकार से स्तुति करने लगे—'हे सर्वेश्वर ! हे प्रभो ! मदासुर के अत्याचार बहुत बढ़ गये हैं। उनके शासन में देवताओं के स्थान छीन लिये गए और मुनियों एवं ब्राह्मणों को समस्त कर्मकाण्ड से वंचित कर दिया गया है। उसकी क्रूरता के कारण समस्त प्राणी त्रस्त हैं। इसलिए आप कृपया सभी विघ्नों को दूर करने की कृपा करें।'

५१ एकदन्त ने वर प्रदान किया—'देवताओ ! तुम जो कहते हो वही होगा। अब तुम निश्चिंत हो जाओ।' यह सुनकर हर्षित हुए देवताओं ने उन्हें प्रणाम किया और सुरक्षित स्थान में एकत्र होने लगे।

उधर एक दिन देवर्षि नारद मदासुर के पास पहुँचे। मदासुर ने उन्हें सम्मानपूर्वक आसन दिया और हाथ जोड़कर बोला—'कहिए देवर्षे ! संसार में कोई नवीन बात हुई हो तो बताइए।'

नारदजी ने कहा–'राजन् ! कोई विशेष बात तो नहीं है, केवल इतना ही कि देवताओं और ब्राह्मणों ने कठोर तपश्चर्या करके भगवान् एकदन्त को प्रसन्न कर लिया है, जिसके फलस्वरूप उन्हें तुमपर विजय प्राप्त करने का वर मिल गया है । इससे प्रबल हुए वे देवता तुम्हारा वध करने के लिए तत्पर हो रहे हैं ।'

सुनते ही मदासुर तिलमिला उठा । उसने नारदजी से पूछा–'मुनिवर ! यह 'एकदन्त' कौन है ? कहाँ रहता है ? उसका कैसा स्वरूप है ? यह सब बातें मुझे स्पष्ट रूप से बताइए ।'

ऋषि बोले–'दैत्यराज ! वे अत्यन्त बलवान् देवता हैं, उनका निवास त्रैलोक्य में सर्वत्र है । वे चाहें जब, चाहे जहाँ प्रकट हो सकते हैं । उनके एक दाँत, हाथी जैसा मुख एवं चार भुजाएँ हैं तथा वे मूषक पर सवार रहते हैं ।'

नारदजी चले गए । मदासुर ने अपने सेनाध्यक्ष को बुलाकर कहा–'विशाल सेना को सुसज्जित करो । हमें शीघ्र ही उस 'एकदन्त' नामक जन्तु से युद्ध करने चलना है ।'

असुरों की विशाल वाहिनी तैयार हुई । उसमें हाथी, घोड़े, रथ, ऊँट आदि पर सवार दैत्यवीर एवं विकट पदाति थे । आगे-आगे अनेक प्रकार के रण-वाद्य बज रहे थे । सेना के चलने से ऐसी धूल उड़ रही थी कि दिशाएँ दिखाई ही नहीं दे रही थीं । मार्ग चलते समय असुरों ने अनेक प्रकार के अपशकुन देखे, जिससे वे भयभीत होने लगे ।

दैत्यसेना 'एकदन्त' की खोज में बिना निर्दिष्ट स्थान के इधर-उधर घूम रही थी । तभी सहसा सबने देखा कि सामने एक महाकाय नर-कुंजर मूषक पर सवार चला आ रहा है । उसके मुख में एक दाँत और चार भुजाओं में परशु, पाश आदि आयुध विद्यमान हैं ।

उस विकट रूप को देखकर भयभीत असुर पुकार उठे–'यह

महाकाय एवं अत्यन्त भयानक नर-कुंजर कौन है, जिसका वाहन मूषक है ? ऐसा तो कभी न देखा न सुना ।'

मदासुर को ध्यान आया—'नारदजी ने ऐसा ही रूप तो बताया था । फिर भी पता करना चाहिए कि यह कौन है ?' उसकी आज्ञा सुनकर एक चतुर असुर दूत रूप में एकदन्त के पास जाकर बोला—'आप कौन हैं ? कहाँ से आये हैं ? इस प्रकार भ्रमण करने का आपका क्या प्रयोजन है ?'

एकदन्त ने उपेक्षापूर्वक असुर-दूत की ओर देखा और बोले—'तुम कौन हो ? कहाँ से आये और मुझसे क्या चाहते हो ?' यह कहते हुए उन्होंने सहज रूप से अपने परशु को कुछ सँभाला ।

दूत इस भय से कि कहीं प्रहार न कर दें, कुछ पीछे हटा और हाथ जोड़कर प्रणाम करता हुआ बोला—'प्रभो ! मैं तो दूत हूँ, इसलिए अवध्य भी । हे नाथ ! मुझे त्रिलोकीनाथ मदासुर ने आपकी सेवा में भेजा है । वे आपके अद्‌भुत एवं अपूर्व रूप को देखकर विस्मित हो रहे हैं । उक्त बातें वे जानना चाहते हैं, इसलिए कृपा कर उनकी शङ्का का निवारण कीजिए ।'

भगवान् एकदन्त उसे भयभीत देखकर हँसे और आश्वस्त-सा करते हुए बोले—'असुर-दूत ! मैं अपने ही आनन्द में निवास करता हूँ । देवताओं और ऋषि-मुनियों की प्रार्थना पर स्वानंद से यहाँ इसीलिए चला आया हूँ कि मुझे मदासुर का ससैन्य वध करके देवताओं और ऋषियों आदि को सुखी करना है । तुम उसके दूत हो, इसलिए तुम उससे जाकर कहो कि यदि वह जीवित रहने की कामना करता है तो देवताओं, ऋषि-मुनियों एवं ब्राह्मणों आदि से द्वेष छोड़कर धर्म-नीति पर चले और मेरी शरण में आ जाय, अन्यथा मैं उसे मार डालूँगा ।'

यह सुनकर असुर-दूत उन्हें प्रणाम कर लौट गया और उसने मदासुर को समस्त संवाद सुनाया । दैत्यराज समझ गया कि यह वही है, जिसके

द्वारा देवता आदि को वर प्राप्त होने की बात नारद जी ने कही थी। उसने सोचा कि 'यह कैसा भी महाकाय और वीर क्यों न हो, मैं इसका वध करने में समर्थ हूँ।'

मदासुर का गर्व-भंजन

ऐसा विचार कर उसने अपनी सेना को युद्ध का आदेश दिया और स्वयं 'एकदन्त' के समक्ष पहुँचकर बोला–'अरे महाकाय जन्तु ! तू मेरे पराक्रम को नहीं जानता ! मैं अभी तुझे धराशायी किए देता हूँ। देख, मेरा रण कौशल।'

यह कहकर उसने एक तीक्ष्ण बाण लेकर धनुष पर चढ़ाया। यह क्या ? वह बाण छूटने से पूर्व ही एकदन्त की ओर खिंचा चला गया और उनके चरणों में जा पड़ा। मदासुर ने आश्चर्यपूर्वक बाण लिया। किन्तु उसके चलने से पहिले ही उसके वक्षःस्थल में तीव्र परशु प्रविष्ट हो गया। वहाँ से रक्त की धार बह चली और असुर धरती पर गिरकर मूर्च्छित हो गया।

किन्तु, वह मरा नहीं, कुछ देर में ही उसे होश आ गया। उसने अपने वक्ष पर प्रहार करने वाले परशु को हाथ में उठाकर देखा, किन्तु तभी वह उसके हाथ से छूटकर भगवान् एकदन्त के कर-कमल में जा पहुँचा। इससे उसे बहुत ही आश्चर्य हुआ।

मदासुर सोचने लगा–'ऐसा क्यों हुआ ? क्या इसमें किसी अद्भुत शक्ति का चमत्कार है ? क्या यह एकदन्त ही सर्वेश्वर सर्वात्मा एवं सर्व समर्थ परात्पर ब्रह्म हैं ? वस्तुतः यही सम्भव है। निश्चय ही यह जगत् के परम कारण परमात्मा ही हैं।'

ऐसा ज्ञान होते ही वह तुरन्त उनके चरणों में जा पड़ा। फिर उठकर उसने हाथ जोड़ते हुए स्तुति की–'प्रभो ! मैं आपको जान नहीं सका था,

आज आपके दुर्लभ दर्शन करके मैं धन्य हो गया हूँ। हे नाथ ! मैं आपकी शरण में उपस्थित हूँ। मुझे क्षमा करिये, क्षमा करिये ।'

एकदन्त ने प्रसन्न होकर कहा–'मैं सन्तुष्ट हूँ, वर माँग लो ।' यह सुनकर मदासुर ने निवेदन किया–'मुझे अपनी सुदृढ़ भक्ति प्रदान कीजिए प्रभो ! और आज्ञा कीजिए कि मैं क्या करूँ ?'

भगवान् ने कहा–'असुरराज ! तुझे मेरी सहज भक्ति प्राप्त होगी । अब तुम स्वर्गादि स्थानों को छोड़ दो और जहाँ देवी-सम्पदा से पूर्ण पूजन, आराधना किया जाता हो, वहाँ प्रवेश नहीं करना तथा आसुरी भाव के कर्मफल-भक्षण की तुम्हें छूट है । अब तुम पाताल में जाकर आनन्दपूर्वक रहो ।'

भगवान् एकदन्त की आज्ञानुसार मदासुर ने स्वर्ग, पृथ्वी आदि पुण्य स्थानों का त्याग कर दिया और वह पाताल में जाकर रहने लगा । देवताओं को अपने लोक की प्राप्ति हुई तथा ऋषि-मुनि आदि निर्भय होकर यज्ञ तप आदि कर्म करने लगे ।

शौनकजी बोले–'हे सूतजी ! आपने भगवान् एकदन्त की यह परम सुखदायिनी कथा सुनाई । इससे मैं अत्यन्त हर्ष को प्राप्त हो रहा हूँ। हे प्रभो! इन भगवान् के जो अन्य चरित्र हों तो भी बताने की कृपा करें। क्योंकि ऐसी कथाएँ कहने में आप ही समर्थ हैं ।'

सूतजी ने कहा–'शौनक ! भगवान् एकदन्त की बहुत-सी कथाएँ हैं। एक बार बैकुण्ठनाथ श्रीहरि ने उनकी उपासना की थी तो एकदन्त ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिए और अभिलषित मणिरत्न चिन्तामणि प्रदान की । भगवान् विष्णु ने उस मणि को एक बार देवराज इन्द्र को दे दिया तथा इन्द्र ने विष्णु के अंशावतार महर्षि कपिल को वह मणि दे दी ।'

उस मणि की महिमा और आकर्षण से आकर्षित हुए गणासुर नामक राक्षस ने उसे महर्षि कपिल से बलपूर्वक छीन लिया । तब महर्षि ने

भगवान् गणेश्वर से गणासुर को पराजित करने की प्रार्थना की । भगवान् गणपति ने गणासुर को मार कर वह मणि पुनः महर्षि को प्राप्त करा दी । तब महर्षि कपिल ने वह चिन्तामणि आदर सहित भगवान् एकदन्त के कण्ठ में पहिना दी । इस प्रकार हे शौनक ! मैंने भगवान् एकदन्त का यह चरित्र संक्षेप में तुम्हें सुना दिया है ।

शौनक बोले–'हे प्रभो ! हे सूतजी ! अब भगवान् गणेश्वर के अन्य आविर्भाव का उपाख्यान कहने की कृपा करें । वस्तुतः इन कथाओं में मेरा मन बहुत लग रहा है ।'

❀❀❀

३. तृतीय अध्याय

३. महोदरावतार का वर्णन

सूतजी बोले–'हे शौनक ! तुम्हारी अत्यन्त प्रीति देखकर अब मैं गणेशजी के 'महोदरावतार' की कथा कहता हूँ । उसे तुम ध्यानपूर्वक सुनो–

"महोदर इति ख्यातो ज्ञानब्रह्म-प्रकाशकः ।
मोहासुरस्य शत्रुर्वै आखुवाहनगः स्मृत ॥"

'शौनक ! 'महोदर' नाम से विख्यात गणेशजी का अवतार ज्ञानब्रह्म का प्रकाश करने वाला है । उन मूषकवाहन को मोहासुर के वध करने वाला कहा जाता है ।'

प्राचीनकाल की बात है–तारक नाम का एक महा भयंकर एवं प्रबल पराक्रमी दैत्य हुआ था । उसने ब्रह्माजी को प्रसन्न करने के लिए घोर तपश्चर्या की थी । उसके तप से प्रसन्न हुए ब्रह्माजी ने प्रकट होकर कहा–'वत्स ! अभीष्ट वर माँगो ।'

उसने प्रणाम कर निवेदन किया–'प्रभो ! मैं तीनों लोकों का अधिपति हो जाऊँ और किसी से भी पराजित न होऊँ।' यह सुनकर ब्रह्माजी ने कह दिया–'ऐसा ही हो।'

अब तो दैत्य ने अपनी विस्तारवादी नीति अपनाई। धरती, स्वर्ग और पाताल का कोई भी भाग ऐसा न छोड़ा, जहाँ स्वाधीनता रही हो। समस्त जन-जीवन त्रस्त हो उठा और देवता, ऋषि-मुनि एवं सज्जनवृन्द पीड़ित हो उठे। धर्म-कर्म समाप्त हो गया।

देवता उस असुर के भय से दुर्गम अरण्यादि स्थानों में छिपे-छिपे फिर रहे थे। मुनियों और ब्राह्मणों को भी यज्ञादि कर्म छिपकर ही करने होते थे। एक बार उन्होंने विचार किया कि भगवान् शङ्कर को इस विपत्ति से बचाने के लिए जगाना चाहिए।

बहुत जप, तप, होम, ध्यान, भजन, कीर्तनादि करने पर भी उनकी उपासना का कोई फल नहीं निकला। क्योंकि भगवान् शङ्कर उस समय समाधि में लीन थे, इसलिए वे देवताओं और मुनियों की आराधना की ओर ध्यान नहीं दे सके।

साधना के सफल न होने की अवस्था में देवताओं आदि ने भगवती शिवा की आराधना की तो उन्होंने अत्यन्त रूपवती भीलनी का वेश बनाया। उस समय उनकी किशोरावस्था और मनमोहक लावण्य था। वे शिवजी के समक्ष जाकर सुगन्धित पुष्प एकत्र करती हुई कामारि के मन में अत्यन्त मोह उत्पन्न करने लगीं।

पार्वतीजी की लीला

उमानाथ की समाधि भङ्ग हो गई। उन्होंने बलपूर्वक अपनी ओर आकर्षित करने वाली उस लावण्यमयी भीलनी को ज्योंही मोहाभिभूत दृष्टि से देखा त्योंही वह अदृश्य हो गई। उस अवस्था में भगवान् शङ्कर

के द्वारा अत्युग्र महापुरुष रूप में जिस मोह की उत्पत्ति हुई वह अत्यन्त सुन्दर था । शिवजी की स्मृति जाग्रत् हुई । वे समझ गये कि यह सब पार्वती की ही लीला है, जो उन्होंने कामदेव के आश्रय से की है । इसलिए उन्होंने अत्यन्त क्रोधपूर्वक उस भयकारी कामदेव को शाप देकर उसकी देह को तुरन्त ही दग्ध कर दिया ।

कामदेव अत्यन्त व्याकुल हुआ । शरीर के दग्ध होने पर वह शाप-मुक्त होने का उपाय सोचने लगा । फिर वह निश्चल भाव से महोदर की आराधना करने लगा । उसकी तपस्या से महोदर प्रकट होते हुए बोले–'कामदेव ! वर माँगो ।'

कामदेव ने भगवान् महोदर को अपने सामने देखा तो तुरन्त उनके चरणारविन्द में गिर गया और फिर हाथ जोड़कर गद्‌गद कण्ठ से उनका स्तवन करता हुआ बोला–'प्रभो ! मुझे भगवान् शङ्कर ने शापित कर दिया है, जिससे मैं दग्ध हो गया हूँ । कृपा कर आप मुझे नीरोगता प्रदान कीजिए, जिससे मेरा कष्ट दूर हो जाय ।'

महोदर ने उससे कहा–'वत्स ! शिव के शाप को अन्यथा करना तो असम्भव है । फिर भी मैं तुम्हारे सुख के लिए अन्य शरीर प्राप्त करा सकता हूँ । तुम वहाँ आनन्दपूर्वक रह सकते हो ।'

"यौवनं स्त्री च पुष्पाणि सुवासानि महामते ।
गानं मधुरसश्चैव मृदुलाण्डज-शब्दकः ॥२॥
उद्यानानि वसन्तश्च सुवासाश्चन्दनादयः ।
सङ्गो विषयसक्तानां नराणां गुह्यदर्शनम् ॥३॥
वायुर्मृदुः सुवासश्च वस्त्राण्यपि नवानि वै ।
भूषणादिकमेवं ते देहा नाना कृता मया ॥४॥

तैर्युतः शङ्करादींश्च जेष्यति त्वं पुरा तथा ।
मनोभूः स्मृति भूरेवं त्वन्नामानि भवन्तु वै ॥"

'हे कामदेव ! हे महामते ! तुम यौवना स्त्री, सुवासित पुष्प, मधुर गायन, मकरन्द रस तथा पक्षियों के मधुर कलश में निवास करो । उद्यान (बाग-बगीचे), बसन्त ऋतु एवं चन्दनादि भी तुम्हारे निवास-स्थान हैं । विषयी व्यक्तियों की सङ्गति, गुह्याङ्गों का प्रदर्शन, मन्द पवन, सुन्दर घर, नवीन वस्त्राभूषण यह सब मैंने तुम्हारे शरीर रूप में रचे हैं । तुम इन शरीरों से युक्त होकर पूर्ववत् ही शङ्करादि देवताओं पर विजय प्राप्त कर लोगे । इस प्रकार तुम्हारे 'मनोभूः' एवं 'स्मृतिभूः' नाम होंगे ।'

कामदेव ने हाथ जोड़कर निवेदन किया–'प्रभो ! यह तो सब अव्यक्त शरीर हुए, किन्तु व्यक्त-शरीर की प्राप्ति का भी कुछ उपाय करने की कृपा करें ।'

महोदर बोले–'अच्छा, अनङ्ग ! तू द्वापरयुग में व्यक्त शरीर भी प्राप्त करेगा । द्वापरयुग में परमात्मा श्रीकृष्ण का पृथ्वी पर अवतार होगा, तब तुम उनके पुत्र प्रद्युम्न होगे ।'

कामदेव प्रसन्न हो गया । उसने महोदर भगवान् को प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा कर पुनः स्तुति की, तदन्तर भगवान् महोदर अन्तर्धान हो गए ।

इधर शिवपुत्र षड़ानन ने भी भगवान् गणेश्वर की उपासना की थी । उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर शिवपुत्र षड़ानन को दर्शन दिए और कहा–'वत्स ! वर माँग लो ।'

स्वामी कार्तिकेय बोले–'प्रभो ! मुझे आपकी कृपा के अतिरिक्त और क्या चाहिए । मुझे आप अपनी भक्ति प्रदान कीजिए ।'

गणेश्वर बोले–'वत्स ! मेरी अनन्य भक्ति तो रहेगी ही । मैं तुझे एक वर और देता हूँ–तू अत्यन्त दुराधर्ष तारकासुर के संहार में ही समर्थ

होगा।' यह वर देकर भगवान् गणाध्यक्ष वहीं अन्तर्धान हो गये। उधर कुमार कार्तिकेय अपने घर पधारे।

सूतजी बोले–'शौनक! ऐसे-ऐसे अनेकानेक अद्भुत चरित्र हैं उन देवाधिदेव महोदर गणपति के जिन्हें सुनकर भक्तों को परमानन्द की और अभक्तों को भय की प्राप्ति होती है।'

शौनक ने जिज्ञासा की–'फिर क्या हुआ, भगवन्! क्या वह त्रैलोक्य विजयी तारकासुर कुमार कार्तिकेय के द्वारा मारा गया अथवा किसी अन्य के द्वारा?'

सूतजी ने कहा–'महोदर भगवान् ने कार्तिकेय को ही उसे मारने का वर दिया था तो वह अन्य किसी के द्वारा कैसे मारा जाता? जब देवताओं को ज्ञात हुआ कि भगवान् गणेश्वर ने कुमार को वर प्रदान किया है तो सब एकत्र होकर उनके पास पहुँचे और तारक को मारने की प्रार्थना करने लगे। तब कुमार ने शिव-शिवा की आज्ञा ली और शिवगणों की सेना साथ लेकर रणांगण में आ डटे। दोनों ओर की सेनायें भीषण संग्राम में लगी थीं। दोनों पक्ष अपनी-अपनी विजय के लिए जी-तोड़ प्रयत्न कर रहे थे, अन्त में कुमार की सेना प्रबल सिद्ध हुई और कुमार के हाथों से तारकासुर मारा गया। इससे देवगण प्रबल हो गए। उन्होंने तुरन्त ही स्वर्ग का राज हथिया लिया।'

शौनक ने पुनः पूछा–'हे सूतजी! भगवान् शङ्कर के मोहित होने से जिस महान् पुरुष मोह की उत्पत्ति हुई थी, उसकी कथा तो वहीं रह गई। प्रभो! उस पुरुष ने कब, क्या किया, यह मुझे बताइए।'

सूतजी बोले–'शौनक! वह भगवान् भास्कर की कृपा से बहुत प्रबल असुर हुआ था। उसे दैत्यगुरु ने अपना शिष्य बनाया और सूर्य की उपासना का आदेश दिया। उसने एकान्त अरण्य प्रान्त में जाकर निराहार रहते हुए एक हजार दिव्य वर्षों तक तपश्चर्या की थी।

उसका घोर तप देखकर भगवान् सूर्य को कृपा करनी पड़ी । उन्होंने सन्तुष्ट होकर दर्शन दिए और वर माँगने को कहा । मोहासुर ने उनके चरणारविन्दों में प्रणाम कर पूजन किया और फिर स्तुति करते हुए निवेदन किया—'प्रभो ! मुझे सर्वत्र विजय प्राप्त हो और मैं त्रिलोक का अधीश्वर बन जाऊँ । साथ ही मुझे कोई रोग न हो ।'

भास्कर 'एवमस्तु' कहकर अन्तर्धान हो गए । मोहासुर अत्यन्त प्रसन्न होकर घर लौटा और शुक्राचार्य को वर प्राप्ति की बात सुनाई । तब उन्होंने उस असुरराज को दैत्याधिपति के पद पर अभिषिक्त किया । फिर दैत्य-प्रवर प्रमादासुर ने अपनी पुत्री मदिरा का उसके साथ विवाह कर दिया ।

५ मोहासुर द्वारा ब्रह्माण्ड विजय-वर्णन

तदुपरान्त उसने दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया । समस्त देवता, मनुष्य, नाग, यक्ष, किन्नर आदि पर विजय प्राप्त कर वह त्रैलोक्याधिपति बन बैठा । उसके क्रूर शासन में देवता एवं मुनि आदि अत्यन्त पीड़ित हो उठे । धर्म-कर्म का लोप हो गया । ब्राह्मणों की जीविका का साधन भी समाप्त हो गया । देवता उसके भय से वन-पर्वतों में छिपे फिर रहे थे । निरीह प्रजा उसके अत्याचारों से त्रस्त हो उठी थी । सभी ने सोचा कि अब क्या किया जाय ? इस असुर के उत्पीड़न से किस प्रकार छुटकारा मिले ? ऐसी चिन्ता करते हुए देवताओं और ऋषियों से भगवान् भास्कर ने ही प्रकट होकर कहा—'मूषकवाहन महोदर की आराधना करो तुम सब । वे ही प्रभु तुम्हारे सङ्कट दूर करेंगे ।'

सूर्य की बात सुनकर देवगणादि ने महोदर भगवान् की प्रसन्नता के लिए घोर तप किया जिससे प्रसन्न हुए गणेश्वर ने प्रकट होकर उनसे पूछा—'क्या चाहते हो ?'

सर्वेश्वर एवं समर्थ प्रभु को अपने समक्ष प्रकट हुए देखकर वे सब

अत्यन्त प्रसन्न हो गये और उनके चरणों में प्रणाम कर गद्‌गद कण्ठ से बोले–'प्रभो ! हमसब मोहासुर के उत्पीड़न से संत्रस्त हो रहे हैं, आप हमारी रक्षा कीजिए ।'

मोहासुर की शरणागति

महोदर ने प्रसन्न होकर अभयदान दिया–'देवताओ ! मुनियो ! तुम सब चिन्ता का त्याग करो । मैं संसार के हितार्थ उस प्रबल दैत्य मोहासुर का संहार कर दूँगा । तुम सब लोग उसके साथ युद्ध करने के लिए आगे बढ़ो ।'

देवर्षि नारद ने मोहासुर को जा बताया कि 'भगवान् महोदर ने तुम्हारे वध का विचार किया है । जब तक तुम्हारा कोई अनिष्ट न हो तब तक उनकी शरण लेने में तुम्हारा कल्याण है ।'

उक्त परामर्श देकर नारदजी चले गए । मोहासुर ने अपने राजपुरोहित शुक्राचार्य से इस विषय में परामर्श किया तो वे बोले–'दैत्यराज ! भगवान् महोदर ही इस समस्त विश्व के कर्त्ता और लय करने वाले हैं । समस्त देवताओं और दैत्यों को भी उन्होंने उत्पन्न किया है । वे प्रभु काल के भी महाकाल हैं । उनके लिए अपना-पराया कोई नहीं है । इसलिए तुम निर्भय होकर उनकी शरण में जाओ तो वे तुम्हें भी अपना लेंगे । अतः तुम अपनी श्रेय कामना से उनको प्रसन्न करके कृपा प्राप्त कर लो ।' तभी महोदर के दूत रूप से भगवान् विष्णु वहाँ पधारे । दैत्यराज ने उन्हें सम्मान सहित आसन दिया और बोला–'कहिए प्रभो ! आप यहाँ किस प्रयोजन से पधारे हैं ?'

विष्णु बोले–'हे मोहासुर ! मैं महोदर का दूत हूँ । उन्होंने यह संदेश दिया है कि यदि तुम देवताओं, मुनियों, ब्राह्मणों एवं समस्त धार्मिक स्त्री-पुरुषों के सुख में व्यवधान उपस्थित न करने का वचन देते हुए उन

दयामय प्रभु की शरण ले लो तो वे तुम्हें क्षमा कर देंगे । अन्यथा रणक्षेत्र में तुम्हारा वध अवश्यम्भावी है ।'

मोहासुर का मोह और गर्व भंग हो गया । उसके चित्त में ज्ञान का प्रकाश हुआ और तब वह भगवान् विष्णु से बोला–'हे देवदूत ! आप उन भगवान् से जाकर निवेदन करिए कि मैं उनकी शरण ले रहा हूँ । वे मेरे नगर में सादर पधार कर अपने अभिनन्दन का अवसर प्रदान करें ।'

विष्णु ने 'साधु! साधु!' कहकर उसकी प्रशंसा की और महोदर के पास लौट गए । महोदर ने उनके द्वारा मोहासुर का सन्देश सुना तो उसके नगर में पधारे । दैत्यराज ने उनका अभूतपूर्व स्वागत किया और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक षोड़शोपचार से पूजन कर स्तुति की और उनकी सभी आज्ञाओं का पालन करने का वचन दिया ।

फिर उसने सुदृढ़ भक्ति की याचना की । महोदर ने उसे इच्छित प्रदान किया और अन्तर्धान हो गए । मोहासुर ने सभी आज्ञाओं का पालन कर संसार भर में सुख-शान्ति स्थापित कर दी ।

दुर्बुद्धि तथा ज्ञानारि दैत्यद्वय का विनाश वर्णन

सूतजी बोले–'शौनक ! हे वत्स ! तुमने भगवान् महोदर की महिमा से युक्त यह अद्‌भुत कथा सुनी, अब तुम्हें एक और उपाख्यान सुनाता हूँ, जिसमें भगवान् महोदर की कीर्ति निहित है । उसे तुम ध्यानपूर्वक सुनो–'एक बार दुर्बुद्धि नामक एक दैत्य बहुत प्रबल हो उठा था । अत्याचारों से पीड़ित देवताओं ने भगवान् गजमुख से निवेदन किया कि उनकी रक्षा की जाय । भगवान् ने कृपापूर्वक उन्हें अभय प्रदान किया और दैत्यराज दुर्बुद्धि को मार डाला । उस दैत्य का पुत्र ज्ञानारि भी बड़ा हठी और पराक्रमी था । अपने पिता के मरने पर उसने गजमुख से प्रतिशोध लेने का निश्चय किया ।

उसकी प्रार्थना सुनकर दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने उसे भगवान् त्रिलोचन को प्रसन्न करने का परामर्श दिया और साथ ही पंचाक्षरी मन्त्र 'नमः शिवाय' की शिक्षा दी । ज्ञानारि निर्जन वन में जाकर उस मन्त्र से अनुष्ठानपूर्वक तपस्या करने लगा । उसके कठोर तप से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर प्रकट हुए, जिनके दर्शन करके अत्यन्त हर्षित हुए असुर ने सर्वत्र विजय और निर्भयता का वर प्राप्त कर लिया ।

वर देकर भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये और असुर प्रसन्न होकर घर लौटा । फिर उसने विशाल असुरसेना एकत्र कर सब लोकों पर विजय प्राप्त कर ली । अब उसके निरंकुश शासन का सर्वत्र आरम्भ हुआ । उसने सभी कर्मों पर रोक लगा दी और छल, अनीति, अनाचार, असत्य, अधर्म, हिंसा, अपहरण आदि की छूट दे दी । उसके अत्याचारों से धरती काँप उठी ।

धरती ने देवताओं के पास जाकर रक्षा की प्रार्थना की । इधर देवता और ऋषि-मुनि भी विवश, असहाय, अनाश्रय एवं भयभीत हो रहे थे । उन्होंने भगवान् विष्णु के पास जाकर कहा—'प्रभो ! ज्ञानारि के अत्याचारों से पीड़ित हुई धरती आपसे रक्षा प्रार्थना करने के लिए आई है । हे नाथ! उसकी निरंकुशता से हम भी अत्यन्त त्रसित हो रहे हैं । आप हमसब पर कृपा कीजिए ।'

भगवान् विष्णु बोले—'देवताओ ! गणेश्वर की उपासना से यह तुम्हारा दुःख शीघ्र दूर हो सकता है । उनके दशाक्षरी मन्त्र 'गं क्षिप्रप्रसादनाय नमः' का जप करते हुए उन्हीं महोदर भगवान् को प्रसन्न करो ।'

देवताओं ने विष्णु के उपदेश से महोदर की आराधना आरम्भ की, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने विष्णुप्रिया लक्ष्मी जी को स्वप्न देकर कहा—'तुमने पहिले पुत्र की इच्छा की थी, उसे पूर्ण करने के लिए मैं ही तुम्हारे पुत्र रूप से प्रकट होऊँगा ।'

सिन्धुतनया ने प्रसन्नता व्यक्त की और निद्रा भंग होने पर उन्होंने अपनी शय्या पर एक अलौकिक शिशु को लेटा हुआ देखा । हरिप्रिया ने उसे तुरन्त अपने अङ्क में उठा लिया और प्यार करने लगीं । उन्होंने उसी समय पूर्ण आनन्द का अनुभव किया था, इसलिए बालक का नाम भी 'पूर्णानन्द' ही रखा ।

उधर महोदैत्य ज्ञानारि के भी पुत्र हुआ था, जिसका नाम उसने सुबोध रखा । वस्तुतः सुबोध यथा नाम तथा गुण ही हुआ । उनके मन में पूर्णानन्द महोदर के लिए अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति का भाव था । वह निरन्तर उन्हीं का स्मरण ध्यान और नाम जप करता रहता । वह अपने पिता के सामने भी भगवान् महोदर का गुणगान किया करता । उसके पिता ज्ञानारि को यह बात सहन नहीं हुई । ज्ञानारि ने पुत्र को बहुत समझाया कि महोदर में कुछ भी सामर्थ्य नहीं है और न ही वह जगदीश्वर ही हैं, जगदीश्वर तो मैं हूँ जो समस्त विश्व पर शासन करता हूँ । इसलिए उसका नाम-स्मरणादि व्यर्थ ही है ।' किन्तु सुबोध ने उसकी बात नहीं मानी ।

जब ज्ञानारि ने देखा कि उसका पुत्र किसी प्रकार मानता ही नहीं, तो अत्यन्त क्रोधित होकर बोला–'अरे दुष्ट ! बता, तेरा वह पूर्णानन्द महोदर कहाँ है ? मैं उसे वहीं जाकर मार डालूँगा ।'

सुबोध बोला–'उन अन्तर्यामी एवं सर्व समर्थ प्रभु को मारना तो दूर, कोई छू भी नहीं सकता । देखो, वे धरती, आकाश, जल, थल, वन, पर्वत, समुद्र, वृक्ष, लता, वल्लरी, पवन, सरोवर, सरिता, अणु, परमाणु आदि सभी में व्याप्त हैं । जितने भी चराचर जीव हैं, उन सभी में प्रभु का निवास है । यहाँ तक कि मुझमें और आपमें भी वे मूषकवाहन महोदर सदैव विद्यमान रहते हैं ।

ज्ञानारि ने लाल नेत्रों से घूरते हुए कहा–'यदि तेरा महोदर सर्वत्र है तो दिखाई क्यों नहीं देता ? यदि वह सामने आये तो मैं उसे इसी समय मार डालूँगा ।'

तभी एक भयंकर ध्वनि के साथ मूषक वाहन गजमुख प्रकट हो गए। ज्ञानारि यह निश्चय भी न कर पाया कि यह कौन है ? कहाँ से आया है ? तभी महोदर ने उसे मार डाला। उसके मरते ही समस्त संसार में सुख-शान्ति स्थापित हो गई।

❀❀❀

४. चतुर्थ अध्याय

४. गजाननावतार

सूतजी बोले–'हे शौनक ! अब मैं भगवान् गणेश्वर के 'गजाननावतार' की कथा कहता हूँ। तुम ध्यान से श्रवण करो–

"गजाननः स विज्ञेयः सांख्येभ्यः सिद्धिदायकः।
लोभासुरप्रहर्ता वै आखुगश्च प्रकीर्तितः॥"

'हे शौनक ! गणेशजी का जो अवतार 'गजानन' से जाना जाता है, वह सांख्य योगियों के लिए सिद्धि का देने वाला है। क्योंकि वह सांख्य-ब्रह्म का धारक है। उस अवतार में उन्होंने लोभासुर का विशेष रूप से संहार किया है। उस अवतार को भी विद्वज्जन मूषकवाहन ही कहते हैं।

इस अवतार की कथा इस प्रकार है कि एक बार भगवान् शंकर के दर्शन की अभिलाषा से धनेश्वर कुबेर कैलास पर्वत पर गये थे। उस समय जगद्वन्द्य शिवजी के पास ही जगज्जननी शिवा भी विराजमान थीं। उनके उस रूप को धनपति कुबेर लुब्ध दृष्टि से देखने लगे। यह देखकर शिवा को क्रोध आ गया और उन्होंने कुबेर को आग्नेय दृष्टि से देखा। इससे अत्यन्त भय को प्राप्त हुए कुबेर से लोभ नामक एक भयंकर असुर की उत्पत्ति हुई, जो कि जन्म से अत्यन्त पराक्रमी और क्रूर था। उसने

कुबेर से पूछा–'मैं कहाँ जाकर रहूँ ?' कुबेर बोले–'तुम शुक्राचार्य के पास जाओ, वे ही तुम्हारी व्यवस्था करेंगे ।'

लोभासुर दैत्यगुरु शुक्राचार्य के पास जाकर उन्हें प्रणाम करता हुआ बोला–'ब्रह्मन् ! मुझे धनेश्वर ने आपकी सेवा में आने को कहा है, मैं उनका पुत्र लोभ हूँ। आप मुझपर कृपा कीजिए ।'

आचार्य ने कहा–'वत्स ! तुम भगवान् शंकर को प्रसन्न करने में पूर्ण समर्थ हो । उन्हीं के द्वारा तुम्हारा भी कल्याण होगा ।'

लोभासुर उन्हें प्रणाम करके निर्जन वन में गया और स्वच्छ जल में स्नान कर, शुद्ध वस्त्र पहिनकर शुक्राचार्य की बताई विधि से भस्म धारण की और भगवान् त्रिपुरारि के ध्यानपूर्वक पंचाक्षरी मन्त्र का जाप करने लगा । इस प्रकार वह दीर्घकाल तक निराहार रहकर तपस्या करता रहा जिससे उसका शरीर बल्मीक हो गया । जब उसकी घोर तपस्या पूर्ण हुई तो भगवान् शंकर ने साक्षात् प्रकट होकर कहा–'वत्स ! वर माँगो ।'

लोभासुर ने अत्यन्त भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और गद्‌गद कण्ठ से स्तुति करने के बाद बोला–'प्रभो ! मुझे त्रिलोक जय में समर्थ और निर्भय बना दीजिए ।'

शिवजी इच्छित वर देकर अन्तर्धान हो गए । लोभासुर ने प्रसन्न मन से अपने अभ्युदय के प्रयत्न आरम्भ किए । प्रमुख असुरों से मिलकर उन्हें अपने पक्ष में खड़ा किया और फिर दैत्यसेना एकत्र कर पृथ्वी जय के लिए चल पड़ा । एक-एक करके उसने सभी राजाओं को परास्त कर धरती पर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया ।

लोभासुर द्वारा राज्य-विस्तार वर्णन

इस बीच लोभासुर ने असुरों की विशाल सेना एकत्र कर ली थी । अपनी अत्यन्त बढ़ी हुई शक्ति देखकर उसने देवलोक पर आक्रमण कर

दिया । भीषण युद्ध हुआ और स्वर्ग पर भी असुर की विजय हुई । उसने स्वर्ग पर अधिकार कर वहाँ अपना एक अधिकारी नियुक्त कर दिया ।

इन्द्र भागकर बैकुण्ठ पहुँचे । उन्होंने लोभासुर की विजय और अपनी पराजय का समाचार सुनकर रमानाथ से उसे मारने की प्रार्थना की तो रमानाथ देवसेना के साथ असुर से युद्ध करने चल पड़े । घोर युद्ध हुआ, किन्तु दैत्यराज को वर प्राप्त होने के कारण भगवान् श्रीहरि को भी उसके सामने से हटना पड़ा ।

अब तो असुर का साहस और भी बढ़ा । उसने सोचा–'युद्धकाल में रुद्र अधिकतर चतुर हैं, इसलिए अपने इस उत्कर्ष काल में उन्हें भी वश में कर लेना चाहिए ।' ऐसा निश्चय कर उसने असुरों की विशाल वाहिनी के साथ कैलास पर आक्रमण कर दिया ।

शिवजी को ध्यान आया कि 'यह वही लोभासुर है जिसने मुझसे त्रैलोक्य-विजय का वर प्राप्त किया था । इसलिए इससे युद्ध करने से कोई लाभ नहीं होगा ।' इतने में उनके पास असुर का एक दूत आया, उन्हें प्रणाम कर कहा–'उमानाथ ! लोभासुर ने सन्देश दिया है कि आप कैलास छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जायें, अथवा युद्ध करें ।' यह सुनकर उन्होंने कैलास छोड़ देना स्वीकार कर लिया और वे तुरन्त सुदूर वन-प्रान्त में चले गए ।

अब लोभासुर पूर्ण रूप से स्वच्छन्द और निरंकुश था । उसे किसी का किंचित् भय नहीं था । उसने तीनों लोकों में यह आदेश प्रसारित करा दिया कि कोई जप, तप, यज्ञ, दान, पुण्य आदि कर्म न करे, अन्यथा दण्डित होगा ।' फलस्वरूप सर्वत्र छल-कपट, चोरी, अपहरण आदि की घटनाएँ होने लगी ।

देव या ऋषि-मुनि और विप्रगण सभी बहुत दुःखित थे । उन्होंने परस्पर में विचार किया कि असुर का वध किस प्रकार हो ? तभी रैम्य

मुनि ने कहा–'असुर को मारने के लिए भगवान् गजानन की कृपा प्राप्त होना बहुत आवश्यक है । वे प्रभु उसे इच्छा मात्र से ही परास्त करने में समर्थ हैं ।'

गजमुख का देवताओं को आश्वासन

सभी को उनका परामर्श बहुत हितकर प्रतीत हुआ और तब वे अत्यन्त भक्तिपूर्वक गजमुख की उपासना करने लगे । उस समय उन्होंने विधिपूर्वक उनका षोड़शोपचार पूजन किया और मन्त्र-जप पूर्वक तपश्चर्या में रत हो गये । उनकी भक्ति देखकर भगंवान् गजानन ने कृपापूर्वक उन्हें अपना दर्शन दिया । देवता आदि ने भगवान् को अपने समक्ष देखा तो सभी ने धरती में अपने-अपने मस्तक टेककर उन्हें प्रणाम किया और स्तवन के पश्चात् लोभासुर के अत्याचारों की बात सुनकर उनसे दया की प्रार्थना करने लगे ।

भगवान् गजानन ने उन्हें आश्वासन दिया–'देवगण ! मुनिगण ! एवं ब्राह्मणो ! घबराओ मत, मैं लोभासुर को हराकर तुम सबको सुख प्रदान करूँगा ।'

फिर उन्होंने शिवजी से कहा–'कामारि ! आप लोभासुर के पास जाकर कह दीजिए कि देवता आदि के छीने राज्यों को लौटा दे तथा अधर्म का त्याग कर दे, अन्यथा संग्रामभूमि में मैं उसका वध कर डालूँगा ।'

शिवजी लोभासुर के पास पहुँचे और उन्होंने उसे भगवान् गजानन का सन्देश यथावत् सुना दिया और परामर्श दिया कि उनकी आज्ञा पालन में ही उसकी भलाई है । इसलिए तुरन्त उनकी शरण में चला जाय ।

उस समय दैत्यगुरु शुक्राचार्य भी वहाँ उपस्थित थे । उन्होंने भी भगवान् शंकर के परामर्श का अनुमोदन किया और उसे समझाया–'राजन् !

श्रीगजानन समस्त लोकों के स्वामी, सभी प्राणियों के ईश्वर एवं समर्थ परात्पर ब्रह्म हैं। वही परमेश्वर ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर के भी उत्पन्न कर्त्ता हैं, अथवा यह तीनों महान् देव उन्हीं के तीन रूप हैं, जिनका कार्य सर्ग, पालन और लय करना है। इसलिए तुरन्त ही उनकी शरण में जाकर अपने जीवन को धन्य बना लो।'

'लोभासुर समझ गया कि परम प्रभु गजानन भगवान् की शरण लेने में ही हमारा कल्याण है।' इसलिए वह तुरन्त ही शिवजी के साथ उनकी शरण में गया और उनके चरणों में पड़कर अपने कुकृत्यों की क्षमा माँगने लगा। यह देखकर भगवान् ने उन्हें क्षमा कर दिया।

समस्त देवता, ऋषि-मुनि एवं ब्राह्मणों के समाज उसके सुमार्ग पर आने से बहुत प्रसन्न हुए। सर्वत्र भगवान् गजानन का जयजयकार गूँज उठा और संसार में सुख-शान्ति छा गयी।

❀❀❀

५. पञ्चम अध्याय

५. लम्बोदरावतार की कथा

सूतजी बोले– 'हे शौनक! मैंने तुम्हें भगवान् गजानन द्वारा लोभासुर पर कृपा करने का यह वृत्तान्त सुनाया। अब उन्हीं प्रभु के लम्बोदरावतार का वर्णन करता हूँ –

"लम्बोदरावतारो वै क्रोधासुरनिवर्हणः।
शक्तिब्रह्माखुगः सद् तत् धारक उच्यते॥"

'हे शौनक! लम्बोदर नामक अवतार में प्रभु गणेश्वर ने क्रोधासुर का उन्मूलन किया था। यह अवतार ब्रह्म की सत्य स्वरूपा शक्ति का धारक

कहा गया है । इसमें भी उनका वाहन मूषक ही रहा है । इसका उपाख्यान निम्न प्रकार है–

क्रोधासुर की उत्पत्ति वर्णन

एक बार की बात है–भगवान् विष्णु ने महामोहप्रद मोहिनी रूप धारण किया था । शिवजी उस मोहिनी रूप को देखकर मोहित हुए । उनके उस रूप को देखकर श्रीहरि ने मन-ही-मन हँसते हुए मोहिनी रूप का त्याग कर अपना यथार्थ रूप धारण कर लिया था । अपने इस प्रकार मोहित होने पर शिवजी को बड़ी खिन्नता हुई, क्योंकि उस कारण उनका शुक्र स्खलित हो गया था ।

शिवजी के उस अमोघ शुक्र से एक महाशक्ति सम्पन्न एवं अत्यन्त पराक्रमी असुर की उत्पत्ति हुई । वह घोर कृष्ण वर्ण वाला था तथा उसके नेत्र ताम्र वर्ण के एवं अत्यन्त चमकीले थे । उसका रूप अत्यन्त भयङ्कर था । वह उत्पन्न होते ही चलने लगा और शिवजी की प्रेरणा से दैत्यगुरु शुक्राचार्य के पास पहुँचा ।

असुर ने उनके चरणों में प्रणाम कर निवेदन किया–'प्रभो ! आप मुझे अपना शिष्यत्व प्रदान करें और आज्ञा दें कि मैं क्या करूँ ?'

शुक्राचार्य ने पूछा–'तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? किसने तुम्हें यहाँ भेजा है ?' किन्तु वह इन प्रश्नों का कुछ उत्तर न दे सका । केवल इतना ही कहा कि 'मैं कुछ नहीं जानता ।'

दैत्यगुरु ने ध्यान लगाकर सब कुछ जान लिया । बोले–'वत्स ! क्रोधावस्था में शिवजी का शुक्र स्खलित हो गया था, उसी से तेरी उत्पत्ति हुई है । इस कारण तेरा नाम क्रोधासुर रहना उचित है । तू भगवान् शङ्कर का पुत्र है, इसलिए परम प्रतापी होगा ।'

आचार्य की बात सुनकर क्रोधासुर बहुत प्रसन्न हुआ । दैत्यगुरु ने

उसके सभी संस्कार कर अधिक योग्य बनाया और फिर शम्बरासुर की अत्यन्त सुन्दरी कन्या 'प्रीति' के साथ उसका विवाह कराया । ऐसी लावण्यमयी स्त्री पाकर क्रोधासुर के हर्ष का पारावार न रहा और वह सुखपूर्वक जीवनयापन करने लगा ।

फिर उसके मन में हुआ कि 'इस प्रकार पड़े रहने से पुरुषार्थ की सिद्धि नहीं हो सकती । पुरुष वही है जो अपने पुरुषार्थ को सफल करने में प्रयत्नशील रहे । इसलिए त्रैलोक्य-विजय के लिए प्रयास करना चाहिए ।' ऐसा निश्चय कर उसने शुक्राचार्य के पास आकर कहा—'आचार्य ! मेरी इच्छा ब्रह्माण्ड-विजय करने की है, इसलिए आप मुझे उसका उपाय बताने की कृपा करें ।'

आचार्य ने कहा—'वत्स ! तुम भगवान् भास्कर की प्रसन्नता के लिए 'घृणिः सूर्य आदित्य ॐ' मन्त्र का अनुष्ठान करो तो तुम्हारी कामना पूर्ण हो सकती है ।'

क्रोधासुर ने शुक्राचार्य जी से अनुष्ठान की विधि पूछी और प्रणाम कर निर्जन वन में चला गया । वहाँ उसने स्नानादि से निवृत्त होकर एक पाँव से खड़े होकर सूर्य मन्त्र के जप का आरम्भ किया ।

वह दिव्य सहस्त्र वर्ष तक धूप, वर्षा, शीत आदि सहता हुआ निराहार खड़ा रहा । उसकी दृष्टि आकाश की ओर लगी रही । मन में भगवान् भास्कर की भक्ति और जिह्वा पर उक्त सूर्य-मन्त्र था । उसकी उत्कट तप-साधना देखकर भगवान् सूर्य की गति में बाधा उपस्थित हुई इसलिए वे असुर के समक्ष आ उपस्थित हुए । असुर ने सुना, कोई गम्भीर स्वर में कह रहा है—'वर माँगु ।'

उसने आँखों को अँगुलियों से कुछ मीड़कर उनकी चकाचौंध दूर करने का प्रयत्न किया और सूर्यदेव के स्वरूप की एक झलक देखकर उनके चरणों में गिर पड़ा । फिर कुछ सँभलकर बोला—'प्रभो ! आप

समस्त विश्व को प्रकाश देने वाले एवं देवताओं के नायक हैं। हे नाथ ! मैं समस्त ब्रह्माण्ड को अपने वश में करना चाहता हूँ। आप मुझे समस्त चराचर विश्व का अधीश्वर बना दीजिए। मैं बल, पराक्रम, ऐश्वर्य आदि में अद्वितीय हो जाऊँ। मुझे कभी रोग एवं मृत्यु की भी बाधा उपस्थित न हो।'

भगवान् भास्कर उसकी वर-याचना से कुछ भयभीत और आशंकित होते हुए बोले–'तुम्हारी कामना पूर्ण हो।' इससे क्रोधासुर को बड़ी प्रसन्नता हुई और वह सूर्यदेव के वहाँ से चले जाने पर अपने घर लौटा तथा आचार्य को वर प्राप्ति की बात सुनाई। उन्होंने उसे दैत्यराज के पद पर अभिषिक्त कर दिया।

उसके मित्रों और अनुयायियों को भी वर प्राप्ति के समाचार से बड़ी प्रसन्नता हुई। सब उसके आश्रय में आकर रहने लगे। वह भी अत्यन्त हर्षपूर्वक दाम्पत्य जीवन व्यतीत करने लगा। उसके दो पुत्र हुए। एक का नाम 'हर्ष' और दूसरे का नाम 'शोक' हुआ।

क्रोधासुर का विजय-अभियान आरम्भ

फिर उसने अपना विजय-अभियान आरम्भ किया। असुरसेनाएँ प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़ीं। धरती पर तो शीघ्र ही विजय प्राप्त हो गई तथा बहुत से राजाओं ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। जो मारे गए या भाग गए या उनके राज्यों पर उसने अपने शासक नियुक्त कर दिए।

इस प्रकार धरती पर अधिकार होने के बाद उसने इन्द्र की अमरावती पर आक्रमण कर दिया। वहाँ विजय प्राप्त होने पर उसने बैकुण्ठ और कैलाश पर भी अधिकार प्राप्त कर लिया। फिर उसने सूर्यलोक पर भी विजय प्राप्त करने की इच्छा से अपना दूत वहाँ भेजा। सूर्यदेव उसे स्वयं

ही वर प्रदान कर चुके थे, इसलिए अब क्या कर सकते थे ? उन्होंने तुरन्त ही अपने लोक का त्याग कर दिया ।

इसके पश्चात् दुःखित हुए समस्त देवताओं ने लम्बोदर गणाध्यक्ष की उपासना आरम्भ की । उनकी परम भक्ति देखकर भगवान् गणेश्वर प्रकट होकर बोले–'देवताओ ! क्या चाहते हो ?'

देवताओं ने क्रोधासुर के अत्याचार की बात बताकर उससे रक्षा की प्रार्थना की । तब भगवान् लम्बोदर ने उन्हें अभय प्रदान किया, जिससे देवता और ऋषि-मुनि आदि निश्चिन्त हो गए । तब आकाशवाणी द्वारा क्रोधासुर को विदित हुआ–'भगवान् लम्बोदर ने देवताओं को अभय दे दिया है, वे समस्त असुरों का नाश कर देंगे ।' दैत्यराज घबराया, उसने अमात्यों से परामर्श किया । साथी दैत्यों ने उसे धीरज बँधाते हुए कहा–'राजन् ! आप चिंता न करें । आप समस्त ब्रह्माण्ड के अधीश्वर हैं, एक बेचारा लम्बोदर ही क्या कर लेगा आपका ? हमें आज्ञा दीजिए कि हम उसे मार डालें अथवा पकड़कर आपके सम्मुख उपस्थित कर दें ।'

उनके वचन सुनकर दैत्यराज बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपनी विशाल सेना की तैयारी का आदेश दिया । उधर देवताओं के साथ लम्बोदर भगवान् की सेना आगे बढ़ी चली आ रही थी । गुप्तचरों ने उसकी सूचना दी तो दैत्यसेना ने राज्य की सीमा पर ही उसका सामना किया ।

क्रोधासुर स्वयं ही रणक्षेत्र में पहुँचा । उसने देखा कि सामने लम्बोदर खड़े हैं । उनका विचित्र वेश है–मूषक पर आरूढ़ हाथी का-सा मुख, तीन नेत्र और लम्बा उदर, नाभि में शेषनाग लपेटे हुए हैं । वह क्रोधपूर्वक बोला–'यह क्या स्वाँग बना लाये हो ?'

लम्बोदर बोले–'अरे मूढ़ ! तुझे अभी ज्ञात हुआ जाता है कि इस स्वाँग का रहस्य क्या है !'